

जीव का चेतन धर्म है और जड़ जड़ है। चेतन जीव जड़ तत्त्वों से नहीं बन सकते; क्योंकि जड़ तत्त्वों में चेतना नहीं है और चेतन से जड़ नहीं बन सकते; क्योंकि चेतन का लक्षण जड़ में नहीं है। अतः दोनों नित्य और सर्वथा भिन्न एवं असंख्य हैं।

हर पचीस वर्ष में जन्तुओं की संख्या दुगुनी हो जाती है, यह कहना अयुक्त है। हां, केवल मनुष्य की संख्या कुछ दिनों से उत्तरोत्तर बढ़ रही है। परन्तु इसमें कोई अन्तर नहीं पड़ता। कहीं दस आदमी हों और कहीं दस अरब आदमी हों और दस अरब में से दस आदमी दसवाली टोली में मिल जायें तो वह टोली दूनी हो जायेगी और दस अरब वाली टोली में से दस निकल जाने से भी उसमें कुछ अन्तर नहीं दिखेगा। इसी प्रकार संसार में कुल छह अरब के भीतर आदमी हैं और अन्य जन्तु एक ही घर, गांव में अरबों होते हैं। उन जन्तुओं में से कुछ मनुष्यों में आ जाते हैं तो जन्तुओं में तो फरक नहीं दिखता और मनुष्यों में फरक दिख जाता है।

119. प्रश्न—जगत में कितने प्रकार के अज्ञानी हैं?

उत्तर—गिन पाना असम्भव हैं। कुछ अनपढ़ अज्ञानी हैं और कुछ पढ़े-लिखे अज्ञानी हैं। सब प्रकार से अज्ञानी वही है जो अपने आपका भवबन्धनों से उद्धार नहीं करता।

120. प्रश्न—छः पशुकर्म क्या हैं और उनका सुधार कैसे हो?

उत्तर—भोजन, छादन, मैथुन, भय, निद्रा और मोह—ये छः पशु कर्म हैं। इनका सुधार इस प्रकार हो सकता है—

भोजन—मांस, मछली, अण्डा, शराब, ताड़ी, गांजा, भांग, तम्बाकू, बीड़ी, सिगरेट आदि अशुद्ध और नशीली वस्तुओं का सर्वथा त्याग करें। सात्विक भोजन ग्रहण करें; परन्तु वह अपनी कमाई का या किसी का सहर्ष अर्पित, शुद्ध और स्वच्छ हो।

छादन—वस्त्र और मकान छादन है। वस्त्रों का उपयोग तन ढकने के लिए हो, फैशन के लिए नहीं। वस्त्र सादा और मध्यवर्तीय हो। घर को धर्मशाला समझकर उससे अनासक्ति हो।

मैथुन—पूर्ण ब्रह्मचर्य का पालन हो या अपने पति-पत्नी में मर्यादानुकूल केवल सन्तान-प्राप्ति के लिए सम्बन्ध रखकर विषयासक्ति से निवृत्ति का प्रयास हो।

भय—भूत-प्रेत, देवी-देवतादि तथा वियोग, रोग, निर्धनता, मरण आदि भयों का त्याग हो। जो संसार में आसक्त है और बुरा कर्म करने वाला होता है

वही भयभीत होता है। आसक्ति और बुराई छोड़ देनेवाला सर्वथा निर्भय होता है और निर्भयता ही सच्ची मानवता है।

निद्रा—चौबीस घण्टे में आठ घण्टे से अधिक और चार घण्टे से कम नहीं सोना चाहिए। वैसे अज्ञान-निद्रा का पूर्ण त्याग ही निद्रा का सुधार है।

मोह—सबको पथिक, स्वतंत्र, मनवश और अपने से पृथक समझकर मोह का त्याग करे। मोह न रखते हुए प्राप्त प्राणियों के साथ अपना उचित कर्तव्य पालन करते रहना चाहिए।

121. प्रश्न—जीव का निवास इस शरीर में कहां है?

उत्तर—हृदय में। वैसे वह शुद्ध चेतन और असंग है, इसलिए स्वरूपतः वह अकेला एवं निराधार है। उसका कोई अन्य स्थान नहीं। उसका अपना चेतन स्वरूप ही उसका स्थान है।

122. प्रश्न—अविद्या किसे कहते हैं?

उत्तर—अविद्या का अर्थ है अज्ञान। वैसे अविद्या का स्वरूप पतंजलिजी ने योग दर्शन में बताया है अनित्य, अशुचि, दुख और अनात्म को नित्य, पवित्र, सुख तथा स्वस्वरूप मानना। जैसे देह अनित्य, अशुचि, दुखपूर्ण एवं जड़ है किंतु इसको नित्य, पवित्र, सुखरूप तथा अपना स्वरूप समझना; यही अविद्या है।

123. प्रश्न—ब्रह्म और जीव में अन्तर क्या है?

उत्तर—‘बृहत्वात् ब्रह्म’ महान को ब्रह्म कहते हैं। यह जीव ही सबका द्रष्टा और कल्पक होने से सर्वोच्च है, अतः यही ब्रह्म है। जीव से पृथक ब्रह्म की कल्पना एक भ्रम है।

124. प्रश्न—गायत्री का मूल रूप कहां, क्या है और उसका अर्थ क्या है?

उत्तर—गायत्री ऋग्वेद के तीसरे मण्डल के बासठवें सूक्त का दसवां मन्त्र है। यहीं से यजुर्वेद आदि अन्य ग्रन्थों में गया है। उसका मूल स्वरूप इस प्रकार है—

तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि। धियो यो नः प्रचोदयात्।

(ऋग्वेद 3/62/10)

इसका अर्थ है—‘हम उस सूर्य देवता का ध्यान करते हैं जो वरण करने योग्य तेजोमय है। वह हमारी बुद्धि को प्रेरणा देता है।’

ऋग्वेद के तद्स्थल पर ‘ॐ भूर्भुवः स्वः’ नहीं है।

125. प्रश्न—आप 'सद्गुरवे नमः' में श्री क्यों नहीं लगाते?

उत्तर—'सद्गुरवे नमः' अपने आप में पूर्ण सरल और सहज है। इसके अतिरिक्त प्राचीन पारखी सन्त से लेकर श्री काशी साहेब, श्री महाराज राघव साहेब तक 'सद्गुरवे नमः' ही लिखते और पुस्तकों में प्रायः छापते आये हैं। देखिए, उनकी अपनी छपाई पुस्तकों का संस्करण। फिर भी जो सन्त-भक्त श्री लगाते हैं कोई बुरा नहीं है। हम प्राचीन परम्परा का निर्वाह करते हुए 'सद्गुरवे नमः' ही लिख और छाप रहे हैं। दोनों की मौलिकता में कुछ अन्तर नहीं है।

*

*

*

126. प्रश्न—कबीरपंथी साधु भोजन करते हैं? यदि हां, तो इसे कैसे और कहां से प्राप्त करते हैं। दूसरों की कमाई खाना 'पाप' खाना है। मेरी समझ से 'राजनीतिक' व सभी प्रकार के 'धार्मिक-मंच' कुछ लोगों के लिए अच्छे-खासे रोजी के साधन हैं। समाज में रहकर समाज की बुराइयों से लड़ा जा सकता है। अच्छे लोगों द्वारा समाज-त्याग करने से बुराइयों का फैलाव व प्रसार तेजी से होता है। हमेशा से जब से सृष्टि प्रारम्भ हुई कोई न कोई पैगम्बर, साधु, महात्मा, महापुरुष समाज की अनेकानेक बुराइयों से जूझता रहा है, परन्तु यह बुराइयों का पहाड़ टस में मस नहीं हुआ। उसी तरह से आज भी मौजूद है, आगे भी रहेगा। कितने लोग चिल्लाते रहेंगे इसे उखाड़ फेंको पर इसका कुछ बिगड़ने वाला नहीं; बल्कि इसकी शक्ति में दिन-दिन बढ़ोत्तरी हो रही है। आप मेरी बात से कहां तक सहमत हैं?

उत्तर—कबीरपंथी, गैर-कबीरपंथी—सभी मत के साधु भोजन करते हैं। वे भोजन कहां पाते हैं? या तो वे स्वयं पैदा करते हैं या गृहस्थ लोग उनको देते हैं। भारत में केवल कबीरपंथी साधुओं के छोटे-बड़े ऐसे हजारों मठ हैं जहां खेती होती है। इसी प्रकार अन्य मतों के साधुओं के पास भी मठ और खेत हैं। हजारों साधु अपने श्रम से अन्न कमाते, खाते और खिलाते हैं।

जहां तक मैं जानता हूं कबीरपंथी साधु भिक्षा नहीं मांगते हैं। उन्हें जो कोई श्रद्धा से बुलाकर सेवा करता है उसी के घर जाते हैं। इसी प्रकार किसी भी मत के विचारवान साधु गृहस्थों के श्रद्धानुसार ही भोजन ग्रहण करते हैं। यदि विचारवान साधु क्षुधातृप्ति के लिए भोजन मांग भी लें तो पाप नहीं है; क्योंकि उनके द्वारा समाज का बहुत बड़ा हित है और उसके बदले में वे समाज द्वारा शरीर-निर्वाह की वस्तुओं को पाने के अधिकारी हैं।

जो साधु के वेष में घुसे हुए विषयी, लम्पट, दुराचारी, नशेड़ी और कुकर्मों हैं वे तो साधु हैं ही नहीं। परन्तु किसी भी मत के जो सदाचारी-ब्रह्मचारी साधु

हैं वे भले ही उच्चतम से निम्नतम कोटि के हों उनके द्वारा समाज का हित है। कक्षा एक और सोलहवीं में पढ़ते हुए सभी विद्यार्थी हैं। इसी प्रकार साधना के क, ख से लेकर सिद्धि अवस्था तक पहुंचे हुए सभी सदाचारी साधु वन्दनीय हैं।

*साधु साधु सब ही बड़े, अपनी अपनी ठौर।
शब्द विवेकी पारखी, ते माथे के मौर ॥ (पंचग्रन्थी)*

कुछ लोगों द्वारा राजनीति और धर्म को अपने स्वार्थ का मंच बना लेने से राजनीति और धर्म दोषी नहीं हैं, दोषी हैं उनका दुरुपयोग करने वाले। बिना राजनीति के किसी देश की व्यवस्था नहीं हो सकती और बिना धर्म के किसी मनुष्य को शांति नहीं मिल सकती। लोगों को चाहिए कि राजनीति और धर्म को रोजी का साधन न बनाकर उनके द्वारा लोककल्याण करें।

“समाज में रहकर समाज की बुराइयों से लड़ा जा सकता है। अच्छे लोगों द्वारा समाज-त्याग करने से बुराइयों का फैलाव व प्रसार तेजी से होता है।”

उक्त बातें तो ठीक हैं, परन्तु समाज को साधु छोड़ कहां देता है? जब तक कोई गृहस्थी में रहता है तब तक उसका सम्बन्ध प्रायः अपने सीमित परिवार से रहता है; परन्तु वही व्यक्ति जब गृहस्थी छोड़ देता है और साधु हो जाता है, तब उसका सम्बन्ध पूरे देश तथा संसार से हो जाता है। साधु का जीवन ही आत्मकल्याण और समाजकल्याण के लिए है। साधु तो सीमित स्वार्थ और परिवार-कूप से निकलकर समाज-समुद्र में पहुंच जाता है।

सच्चा साधक परिपक्व होकर गृहस्थी छोड़ता है और साधु दशा में आकर साधना द्वारा सदाचार और शांति को प्राप्त करता है। पश्चात उस सदाचार और शांति से जीवनपर्यन्त स्वयं सुखी रहता है और समाज को जहां तक लोग उससे गुण लेते हैं, अपने सम्पर्क मात्र से सुखी करता है।

सरकार के द्वारा संताननियोजन, मत्स्यपालन, मुरगीपालन, सूकरपालन आदि अनेक विभाग खुले हैं; परन्तु क्या उसके द्वारा मानव-धर्मपालन का भी कोई विभाग खुला है? यह विभाग सन्तों का है जो निःशुल्क है।

कोई भी व्यक्ति जब साधु होने के लिए घर छोड़ता है तब वह अपना व्यक्तिगत धन या तो परिवार वालों के लिए छोड़ आता है या समाज की सेवा में लगा देता है। वह अपने जीवन निर्वाह की वस्तुओं का साधन संक्षिप्त कर देता है। साधुओं का ब्रह्मचर्य व्रत देश की जनसंख्या वृद्धि पर स्वाभाविक रोक लगाता है जो समसामयिक समस्या का एक आदर्श आंशिक समाधान है।

एक गृहस्थ आदमी घर छोड़कर प्रायः बाहर नहीं जा पाता और साधु देश के विभिन्न क्षेत्रों में विचरणकर सदाचार और शांति का प्रचार करता है। पता

नहीं आप यह कैसे मान लिए कि 'साधु समाज को छोड़ देता है।'

सृष्टि तो कभी आरम्भ ही नहीं हुई, यह प्रवाहरूप अनादि और अनन्त है। "सदा से संत होते आये, परन्तु वे बुराइयों का अन्त नहीं कर सके।" आप यह विचार करें कि जितने सच्चे संत हैं वे स्वयं तो बुराइयों से परे हैं। यदि वे भी बुराइयों में सने होते तो संसार में बुराइयों की मात्रा आज से कहीं अधिक होती।

बुराई-भलाई सदा से रही है। समष्टि रूप में न तो कभी पतन रहा न उत्थान। बुराई-भलाई व्यक्तिगत चलती है। व्यक्तिगत सुधार-बिगाड़ होते हैं। जो व्यक्ति संत के सम्पर्क में आ जाता है उसका आंशिक या सर्वांश सुधार हो जाता है। सरकार दण्ड दे-दे कर जिसका सुधार नहीं कर पाती उसका सुधार संतों के सम्बन्ध से हो जाता है। मैं यहां उनको संत नहीं कह रहा हूं जो केवल वेषधारी हैं, मैं तो सच्चे संतों को कहता हूं, भले ही उनकी क्षमता कम-वेश हो।

यदि हम सनकादि, राम, कृष्ण, बुद्ध, महावीर, जरथुस्त्र, कनफ्यूशियस, लाओत्से, ईसा, मुहम्मद, कपिल, कणाद, पतंजलि, शंकराचार्य, रामानन्द, कबीर, नानक, तुलसी, दयानन्द, रामकृष्ण परमहंस, विवेकानन्द, अरविन्द, पलटू, दादू, दरिया, घीसा आदि—संत परम्परा को निकाल दें तो संसार के इतिहास में क्या रह जायेगा?

यह ठीक है कि लोग झूठे धर्म के नशा में पड़कर अमानवीय व्यवहार किये और करते हैं, परन्तु इसमें सच्चे धर्म का दोष नहीं है। यह भी विचारणीय विषय है जब धर्म के प्रचार होते हुए लोग इतने बुरे हैं तब धर्म का प्रचार न होता तो क्या होता?

If men are so wicked with religion, what would they be without it!
(Franklin)

धर्म के होने पर जब मनुष्य इतने नीच हैं, तो धर्म के न होने पर वे क्या होंगे?

'बुराई आज है, आगे भी रहेगी' तो क्या उसको दूर करने के लिए प्रयत्न या प्रचार न किया जाये? बीमारी संसार में सब समय रहती है, परन्तु उसको दूर करने का प्रयत्न भी सब समय चलता है। व्यक्तिगत दूर भी होती है। वैसे बुराई भी व्यक्तिगत दूर होती है।

हर गांव तथा नगर में जितना धन नित्य दुर्व्यसन में नष्ट होता है वहां उसका शतांश भी संत-सेवा में नहीं लगता है। यह व्यर्थ भ्रम है कि संत

आर्थिक दृष्टि से देश के भार हैं जबकि देख लिया गया है कि कितने ही साधुओं का निर्वाह उनके स्वयं के उपार्जित धन से होता है। गलत वेषधारियों से देश का अहित अवश्य है। उसके विषय में देश को अवश्य सोचना चाहिए।

मनुष्य डाक्टर, वकील, विद्वान, धनी, शुभगुणी जो कुछ बनना चाहे उसके लिए आदर्श की आवश्यकता पड़ती है। डाक्टर बनने के लिए डाक्टर का तथा वकील बनने के लिए वकील का आदर्श आवश्यक है। शुभगुणी, सदाचारी एवं शान्त बनने के लिए एकमात्र संतों का ही आदर्श है।

मनुष्य वही नहीं है जो भौतिक चश्मे से दिखाई देता है। उसका सच्चा स्वरूप आध्यात्मिक है जो इस भौतिक खोल (शरीर) के भीतर विराजमान है। सारा भौतिक ऐश्वर्य पाकर भी मनुष्य शांत तब तक नहीं होता जब तक वह आध्यात्मिक ज्ञान और आध्यात्मिक उन्नति नहीं कर लेता, और यह संतों के सत्संग के बिना असम्भव है। जहां सब दुखों का सर्वथा अन्त होकर परमशांति की प्राप्ति होती है आध्यात्मिकता के उस उच्चतम शिखर पर स्वयं पहुंचना और दूसरों को उस ओर प्रेरित करना संतों के मुख्य उद्देश्य और कर्तव्य हैं।

127. प्रश्न—जन्म-मृत्यु को जब आप कर्मवश मानते हैं तब चाण्डाल के घर में पैदा हुए जीव पर समाज या व्यक्ति द्वारा होते हुए अत्याचार पर खेद कैसा? वह तो अनिवार्य शर्त है।

उत्तर—मान लो, पुनर्जन्म और कर्मफल भोग कुछ नहीं है, हमें जो कुछ सुख-दुख का भोग होता है एक अचानक घटना या संयोग है; तो इस सिद्धांत से हमें अपने कर्मों को सुधारने की कोई आवश्यकता नहीं। हमें केवल कानून से बचे रहना है, फिर चाहे कितना अत्याचार करें हमें कुछ होने वाला नहीं है। परन्तु क्या यह भौतिकवाद अत्याचार को बढ़ाने वाला नहीं होगा?

यह निश्चित सत्य है कि जीव अपने कर्मों के फलभोग पाता है। उसका जन्म-मृत्यु प्रवाह उसके कर्मानुसार है। रहा, भंगी-ब्राह्मण तो हम लोगों ने बना रखा है। क्या हर व्यक्ति अपना भंगी नहीं है? जिसमें बौद्धिक और आध्यात्मिक विकास करने की क्षमता न हो वह शूद्र है और ऐसे व्यक्ति आज के तथाकथित ब्राह्मण परिवार में भी भरे पड़े हैं और जिसमें बौद्धिक तथा आध्यात्मिक विकास की शक्ति हो वह ब्राह्मण है और ऐसे व्यक्ति तथाकथित शूद्र परिवार में भी हैं। भंगी टट्टी फेंकने के समय में अशुद्ध होने से अछूत है। उसी प्रकार टट्टी करके आया हुआ ब्राह्मण भी जब तक स्नान आदि शुद्धि नहीं कर लेता है, अशुद्ध है। स्नानादि पूर्ण शुद्धि के बाद दोनों एक समान स्पर्शीय हैं। तथाकथित जाति के आधार पर किसी को नीचा देखने तथा उसके साथ अत्याचार करने का हेतु केवल अज्ञान है।

एक ही माता-पिता के कई पुत्र होते हैं। कोई बुद्धि में तीव्र होता है तथा कोई महा गोगाबसंत। यह किसका पक्षपात है? यह अपने ही कर्मफल भोग हैं। कोई जीवन भर स्वस्थ रहता तथा कोई धन से सम्पन्न होकर भी असाध्य बीमारी से पीड़ित है, ऐसा क्यों? यह सब जीव के पहले या इस जन्म के कर्मफल भोग हैं।

128. प्रश्न—चेतन का स्वरूप क्या है? यह मुक्त होकर कहां स्थिर होता है?

उत्तर—चेतन का स्वरूप ज्ञान मात्र है। वह मैं ही हूँ। मैं सबके अस्तित्व पर संदेह भले करूँ, परन्तु मेरे अपने आपके अस्तित्व में संदेह असम्भव है। मैं सोचता हूँ इसलिए मैं हूँ, डेकार्ट ने कहा है—I think therefor I am.

चेतन मुक्त होकर अपने आप रहता है; परन्तु यह बात तब तक नहीं समझ में आयेगी जब तक हम यह नहीं जानते कि मुक्त कैसे हुआ जाता है और जब तक हम इसी जीवन में अपने आपको मुक्त नहीं कर लेते। इसके लिए विवेकी संतों से साक्षात् मिलकर सत्संग किये बिना पूरा हल नहीं होगा।

129. प्रश्न—परम चेतन के अस्तित्व में संदेह होने पर क्या 'मुक्त' के विषय में सोचना भ्रम मात्र नहीं है?

उत्तर—अवश्य भ्रम मात्र है। जो यह समझता है कि परम चेतन कोई मुझसे पृथक् होगा और इसलिए उसको पाने की कल्पना करता है तो वह निश्चित ही भ्रम में है। जो वस्तु हमसे पृथक् होगी, उसका हमारा सम्बन्ध क्षणिक ही होगा। किसी दूसरे से सम्बन्ध करना मोक्ष नहीं है वह तो बन्धन है। मोक्ष का अर्थ है सबसे अलग हो जाना। अलग होने पर मैं 'केवल' हूँ। यही परम चेतन है। मैं साक्षी हूँ। साक्षी में दूसरे साक्षी की कल्पना करना भ्रम है।

व्याकरण की दृष्टि से भी 'मैं' ही उत्तम पुरुष है। 'मैं' को, 'अपने आप' को छोड़कर परम चेतन की कल्पना करना अल्पज्ञता है।

130. प्रश्न—अनादिकाल से असंख्य चेतन होने पर भी संख्या में संतुलन है। केवल कर्मवश जन्म होता है तब सभी दुष्कर्म करने वाले सांप ही सांप या बाघ ही बाघ क्यों नहीं हो जाते?

उत्तर—असंख्य चेतन की आपने कितनी संख्या करके संतुलन किया है? आप यथा-तथा मनुष्यों को गिन सकते हैं? इन कीड़े-मकोड़ों की गणना असंभव है। और यदि संख्या में सन्तुलन हो तो बुरा क्या? क्या बुरे कर्मों का भीषण फल सांप और बाघ होना ही है? अपने दुष्कर्मों का फल तो जीव को

भोगना ही पड़ेगा। उत्तम मनुष्य शरीर में क्या कोढ़ आदि रोगों से दुख नहीं होता।

131. प्रश्न—मर जाने के बाद यदि शरीर को काटा जाये तो पीड़ा का अनुभव नहीं होता। यदि इस जन्म के कर्मों का फल अगले जन्म में मिले तो उस फल का क्या महत्त्व?

उत्तर—जिसको सब का ज्ञान होता है, उस चेतन के न रहने पर मुरदा शरीर में पीड़ा का अनुभव कौन करेगा?

जीव जो कर्म करता है उसका फल उसे तत्काल मिलता है, परन्तु उसकी वासनाएं शेष रहती हैं और वे जन्मान्तर में भी सुख-दुख देती हैं। कोई व्यक्ति चोरी करते पकड़ा जाता है और वह तत्काल पीटा जाता है; परन्तु उससे उसका छुटकारा नहीं होता। वह पुनः अपने किये हुए कर्मों के मनस्तापों से पीड़ित रहता है।

132. प्रश्न—आप लिखते हैं कि बुरे कर्म करने पर दुख से कोई उबार नहीं सकता, तो लाखों प्राणी नाना प्रकार के दुष्कर्मों में नित्य रत हैं, सैकड़ों राजपुरुष नरसंहार-बालसंहार का नाटक जगत की थोथी मान्यताओं के लिए करते हैं, फिर भी सुखों के भोग से उनके कर्म उन्हें वंचित नहीं कर सके?

उत्तर—कर्मों का फलभोग निश्चित ही होता है। जिस प्रकार गाड़ी में जुड़े हुए बैल के पीछे गाड़ी के चक्के लगे रहते हैं; उसी प्रकार कर्म कर लेने के बाद वे कर्म जीव के साथ लग जाते हैं। यह ठीक है कि कार्तिक का बोया चैत्र में फल देता है; परन्तु देता है।

संहार करने वाले व्यक्तियों का हृदय सदैव जला करता है। बाहरी वस्तुओं से सच्चा सुख नहीं मिलता। सच्चा सुख तो जीवन की पवित्रता है। कोई संहार द्वारा राज्य-सुख को भले पा ले, परन्तु वह आत्मसुख को नहीं पा सकता जिसके बिना मनुष्य को स्वप्न में भी विश्राम कहां? दुराचारी व्यक्ति इसी जीवन में जलता है; भविष्य में तो उसे भरपेट कर्म फल भोगने ही हैं। यह रहस्य विवेक से समझा जा सकता है।

*

*

*

133. प्रश्न—गृहस्थी-धर्म पालन के लिए शादी करना जरूरी है क्या?

उत्तर—साधारणतया विवाह सहित जीवन को ही गृहस्थी कहते हैं; परन्तु यदि शाब्दिक अर्थ किया जाये तो गृह में रहनेवाला ही गृहस्थ है—गृह = घर, स्थ = स्थित। घर में रहने के लिए धन कमाने की तो आवश्यकता है, परन्तु

शादी की कोई जरूरत नहीं है। यदि मन को वश में किया जा सके तो शादी रूपी कारावास में बन्द होने की कौन विवेकी राय देगा?

134. प्रश्न—सुखी जीवन व्यतीत करने के लिए गृहस्थी में रहना जरूरी है?

उत्तर—व्यक्ति न घर में रहकर सुखी होता है न घर को छोड़कर। वह तब सुखी होता है जब भोगों को छोड़कर अपने मन-इन्द्रियों पर विजयी और आत्मतुष्ट हो जाता है।

135. प्रश्न—गृहस्थी में रहकर भी ब्रह्मचारी रहा जा सकता है क्या?

उत्तर—गृहस्थी में रहने का मतलब घर बनाकर रहना। घर बनाकर रहो, परन्तु ब्रह्मचारी बनकर रहो। वस्तुतः वही गृहस्थ (घर में रहने वाला) सुखी होता है जो सच्चे अर्थों में ब्रह्मचारी है।

136. प्रश्न—क्या शादीशुदा व्यक्ति का जीवन सार्थक माना जायेगा?

उत्तर—जीवन की सार्थकता निर्विषय, एकाग्र और शांत होने में है। इसके लिए शुद्ध ब्रह्मचर्य की आवश्यकता है। जिसका स्वाभाविक प्रवेश ब्रह्मचर्य में न हो वह शादी करे और एक मर्यादा में रहकर धीरे-धीरे संयम और ब्रह्मचर्य अपनावे। साधारण कोटि के व्यक्ति को शादी अमर्यादित जीवन से हटाकर संयम की ओर ले जाती है; किन्तु पतित मानव ने शादी को वासनात्मक बना लिया है।

137. प्रश्न—अगर घर वाले जबरदस्ती शादी कर दें तो...?

उत्तर—यदि लड़का निश्चयपूर्वक शादी नहीं चाहेगा तो घर वाले जबरदस्ती शादी नहीं कर सकते; लड़के को अपने निश्चय के अनुसार कर्तव्य करना पड़ेगा। फिर पढ़े-लिखे और युवक लड़के की शादी कोई जबरदस्ती कैसे कर सकता है? और जबरदस्ती की गयी शादी की जिम्मेदारी लड़के पर है भी नहीं। यही बात लड़की की भी है।

138. प्रश्न—क्या कबीर साहेब के भी कोई गुरु थे? अगर थे तो उनका नाम बताइये?

उत्तर—साधारणतया स्वामी रामानन्दजी महाराज को उनका गुरु बताते हैं। कुछ विद्वान दोनों का समय भिन्न बताकर इसका खण्डन करते हैं। यदि दोनों सन्त समसामयिक रहे हों तो भी लोग यही कहते हैं कि कबीर साहेब स्वयं पूर्णज्ञानी थे, केवल लोकमर्यादा के लिए उन्होंने स्वामी जी को गुरु माना था। स्वामी रामानन्दजी की स्वस्वरूप से भिन्न राम की कल्पना देखकर कबीर

साहेब ने कहा है—

रामानन्द रामरस माते, कहहिं कबीर हम कहि कहि थाके ।

(बीजक, शब्द 77)

अतः सद्गुरु कबीर स्वतः पारख प्रकाशक एवं ज्ञानी थे। उनके खरे पारखबोध एवं ज्ञान को देखते हुए कहना पड़ता है कि उनके बोध का गुरु कोई न था, वे स्वयं गुरु थे। जैसा कि कहा है—

प्रायेण मनुजा लोके लोकतत्त्वविचक्षणाः ।

समुद्धरन्ति ह्यात्मानमात्मनैवाशुभाशयात् ॥

(श्रीमद्भागवत 11/7/19)

अर्थात्—संसार में जो मनुष्य 'यह जगत क्या है? इसमें क्या हो रहा है?' इत्यादि बातों का विचार करने में निपुण हैं वे चित्त में भरी हुई अशुभ वासनाओं से अपने आपको स्वयं अपनी विवेक-शक्ति से ही प्रायः बचा लेते हैं।

139. प्रश्न—माया को नाशवान जानकर भी मनुष्य चेत में क्यों नहीं आता?

उत्तर—क्योंकि वह अविद्याग्रसित है। सत्संग, स्वाध्याय तथा विवेक द्वारा अविद्या के नष्ट हो जाने पर ही मनुष्य यथार्थ स्थिति में आ सकता है।

140. प्रश्न—लव-कुश के बाद क्या रघुवंशियों का वंश नहीं चला? यदि चला तो कहां तक?

उत्तर—अतीत के गर्त में समाया है।

141. प्रश्न—जब आत्मा अमर है तब गीता में उसे मारने को क्यों कहा?

उत्तर—क्योंकि आत्मा तो मरेगी नहीं और विरोधियों के शरीर मिट जायेंगे। परन्तु यह अमरता के सिद्धांत का दुरुपयोग है।

142. प्रश्न—मानव जीवन का अन्तिम लक्ष्य क्या है और उसकी प्राप्ति का साधन क्या है?

उत्तर—मानव जीवन का अन्तिम लक्ष्य है स्वरूपस्थिति एवं परमशांति की प्राप्ति। यह तब प्राप्त होगी जब बोधनिष्ठ सद्गुरु की चरण सेवा करके स्वरूपबोध प्राप्त किया जायेगा और विषयों से सर्वथा विरक्त होकर अपने आप में एकाग्रता होगी। ऐसे पुरुषों के द्वारा ही जनकल्याण होता है।

143. प्रश्न—सत्य की विजय होती है ऐसा लोग कहते हैं, फिर भी मानव झूठ क्यों बोलता है? जब वह मृत्यु से डरता है, तब पाप क्यों करता है?

उत्तर—इन सबका कारण है मोह, अविवेक एवं अज्ञान।

*

*

*

144. प्रश्न—जनक को विदेह क्यों कहा जाता है जबकि वे राजकाज तक करते थे और श्रीकृष्ण को योगेश्वर क्यों कहा जाता है जबकि उनके 16108 रानियां थीं तथा अन्य बहुत-सी गोपियों से सम्बन्ध था, और रासक्रीड़ा करते थे?

उत्तर—जनक राजकाज करते हुए भी उससे बहुत कुछ अनासक्त थे इसलिए भावुकता में उनको विदेह कह दिया गया होगा। यह नहीं कि उनको देह का भान नहीं था; अपितु देह से अनासक्त रहे होंगे।

श्रीकृष्ण महाराज का चित्र श्रीमद्भागवत आदि पुराणों में भद्दा कर दिया गया है। गोपियों के साथ रास तथा हजारों रानियों से विवाह—यह सब लेखकों के अपने भोलापन में उनकी महिमा के नशा में कह डाला गया है। भागवत से पहले बने ग्रंथ महाभारत में यह वर्णन है कि श्रीकृष्ण की केवल एक शादी रुक्मिणी से हुई थी और शादी के बाद भी वे हिमालय में बारह वर्ष ब्रह्मचर्यपूर्वक तप किये और उनकी पत्नी रुक्मिणी ने भी ब्रह्मचर्य का पालन करके बारह वर्ष व्यतीत किये, तत्पश्चात् उनको प्रद्युम्न नामक लड़का पैदा हुआ। यथा—

*ब्रह्मचर्यं महद् घोरं तीर्त्वा द्वादशवार्षिकम्।
हिमवत्पार्श्वमास्थाय यो मया तपसार्जितः ॥
समानव्रतचारिण्यां रुक्मिण्यां योऽन्वजायत।
सनत्कुमारस्तेजस्वी प्रद्युम्नो नाम मे सुतः ॥*

(महाभारत, सोप्तिकपर्व, 12/30, 31)

अर्थ—(श्रीकृष्णजी कहते हैं—) मैंने बारह वर्षों तक महान घोर ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करते हुए हिमालय की घाटी में तप किया तथा मेरे समान रुक्मिणी ने भी व्रत पाला और उसके गर्भ से सनत्कुमार जैसा प्रद्युम्न नाम से तेजस्वी लड़का पैदा हुआ जो मेरा पुत्र है।

इस प्रकार जो गृहस्थी में रहकर भी विवाह के बाद बारह वर्ष तक ब्रह्मचर्यपूर्वक तप करे वह योगेश्वर कहा जाये तो ठीक ही है।

श्रीकृष्णजी अपने जीवन के प्रभात से मृत्यु बेला तक युद्ध ही करते रहे। अनेक आततायी रजवाड़ों को उन्होंने परास्त किया। अन्ततः उनका परिवार

1. हरिवंशपुराण विष्णुपर्व 60/40-44 के अनुसार श्रीकृष्ण की शादी सत्यभामा आदि से भी हुई थी, परन्तु इसमें सत्य-सार कितना है कहा नहीं जा सकता।

गृहकलह से आपस में कटकर मर गया। इस प्रकार वे जीवन भर घोर उथल-पुथल एवं झंझावातों में रहकर भी घबराते नहीं थे। इसलिए योगेश्वर कहे जाने योग्य ही थे।

यह बात सच है कि श्रीकृष्णजी का योगेश्वरपन राजनीतिक था। वे कोई विरक्त संत नहीं थे कि उनके योग को पतंजलि कथित योग से तौला जाये।

गीता-लेखक ने जो गीता में कृष्ण का स्वरूप दिया है, काल्पनिक है। यह नहीं कि श्रीकृष्ण काल्पनिक हैं; अपितु उनका सम्पूर्ण रूप काल्पनिक है। गांधीजी ने अपनी गीता अनासक्तियोग पृष्ठ 97 में लिखा है—‘केवल सम्पूर्ण कृष्ण काल्पनिक हैं। सम्पूर्णावतार का आरोपण पीछे से हुआ है।’

सारांश यह है कि विविध उलझन वाली बातों में रहकर भी वे दृढ़, धैर्यवान और निर्भीक थे; अतः राजनीतिक क्षेत्र के योगेश्वर ही थे।

145. प्रश्न—आत्मा के मोक्ष की स्थिति से क्या अभिप्राय है?

उत्तर—जीव का जीवन भर सबसे अनासक्त होकर शान्त रहना और शरीर छूट जाने पर पुनः दुखालय देह में न आकर असंग रहना—मोक्ष है। विदेहमुक्ति की चिन्ता मत करो। जीवन्मुक्त बनो, विदेहमुक्ति अपने आप होगी।

प्रश्न—क्या वैराग्य धारण से ही मोक्ष मिलता है?

उत्तर—क्या इसमें भी दो राय हो सकती है?

मुक्ति विषय वैराग्य है, बन्धन विषय स्नेह।

यह सद्ग्रन्थन को मतो, मन माने सो करेह ॥

146. प्रश्न—जीवन के लिए वास्तविक शिक्षा क्या है?

उत्तर—कर्म करो जिससे अपने और पराये का भौतिक हित हो तथा विषयों से विरत होओ जिससे आत्मकल्याण हो। जो आत्मकल्याण कर लेता है उसके द्वारा दूसरे का भी कल्याण होता है।

147. प्रश्न—अंतराष्ट्रिय द्वेष बढ़ गया है, अतः पृथ्वी के नाश के लिए अणुबम डालना स्वाभाविक है जिसमें सभी जीवधारी नष्ट हो जायेंगे, तब जीवों की स्थिति क्या होगी?

उत्तर—होने दीजिए, फिर विचार किया जायेगा। सत की सत्ता नित्य रहती है—घबराने की आवश्यकता नहीं है।

148. प्रश्न—यदि जीव का शरीर में निवास हृदय है तो कृत्रिम हृदय लगाने पर जीवधारी की अन्य क्रियाओं तथा स्वभाव में परिवर्तन क्यों नहीं होता?

उत्तर—जीव हृदय के किसी मांस के लोथड़े में नहीं लिपटा रहता कि उस लोथड़े के बदलने से वह भी बदल जाये। वह हृदय के शून्याकाश में स्थित है। हृदय निकालकर कृत्रिम हृदय लगाने से यदि क्रिया, स्वभाव, पूर्वस्मृति नहीं बदले तो स्वतः सिद्ध हो गया कि जीव नहीं बदला है।

सीधी बात है, प्राणी में चेतना एक सर्वोच्च गुण है जो जड़द्रव्य का नहीं हो सकता। चेतन जीव ही वह द्रव्य है जिसमें चेतना गुण है। वैज्ञानिक भी जड़तत्त्वों में चेतना गुण नहीं पाये। इसलिए चेतन जड़ से सर्वथा पृथक द्रव्य है जिसके न रहने पर शरीर निरर्थक है।

149. प्रश्न—जब जीव ज्ञाता है तब भूल क्यों करता है?

उत्तर—विषयासक्तिवश भूल करता है। उसे छोड़ना चाहिए। ज्ञाता ही भूल और चेत दोनों कर सकता है। मिट्टी, पानी, अग्नि आदि जड़तत्त्व न भूल कर सकते हैं न चेत। यह द्रष्टा जीव आसक्तिवश भूल करता है तथा अनासक्त होने पर भूल नहीं करता।

150. प्रश्न—राग-द्वेष किसे कहते हैं?

उत्तर—राग कहते हैं आसक्ति को तथा द्वेष कहते हैं घृणा को।

151. प्रश्न—रजोगुण, तमोगुण, सतोगुण के कर्मों की पहचान क्या है?

उत्तर—काम, राग, टाट तथा अधिक कर्मों में प्रवृत्ति रजोगुण कर्म हैं; मूढ़ता, आलस्य, हिंसाभाव आदि तमोगुण कर्म हैं तथा ज्ञान, प्रसन्नता, एकाग्रतादि सतोगुण कर्म हैं।

152. प्रश्न—मनु का अंश मानव तथा दनु का अंश दानव मानते हैं, क्या यह सच है?

उत्तर—पुराणानुसार प्रजापति मनु की पत्नी का नाम भी मनु है जिनसे मनुष्य होना मानते हैं और दनु कश्यप की स्त्री का नाम है जिससे दानवों का होना बताते हैं। इसी प्रकार कश्यप की स्त्री दिति से दैत्य तथा अदिति से (आदित्य) देवताओं का उत्पन्न होना मानते हैं। इतना ही क्या, कश्यप की विभिन्न पत्नियों से पशु, पक्षी, कृमि आदि की भी उत्पत्ति होना माना है। यह सब मनगढ़न्त कल्पना है। वस्तुतः सृष्टि और जगत अनादि है। मनुष्य में ही देवता-दैत्य कहलाते हैं।

*

*

*

153. प्रश्न—यदि जीव का स्थान हृदय है, तो उसका आकार क्या है? हृदय के अतिरिक्त शरीर क्या शून्य है? यदि शून्य है तो उसका अनुभव क्यों होता है?

उत्तर—ज्योतिषामपि तज्ज्योतिस्तमसः परमुच्यते। ज्ञानं ज्ञेयं ज्ञानगम्यं हृदि सर्वस्य विष्टितम्॥ गीता 13/17 ॥

अर्थ—वह ज्योतियों की भी ज्योति तथा अन्धकार से परे कहा जाता है। वह ज्ञान है, जानने योग्य है, जाना जा सकता है, वह सबके हृदय में स्थित है।

उसका आकार नापा नहीं जा सकता। वह सूक्ष्मतम है।

स्टेशनमास्टर फोन द्वारा दूर की बातें अपने कमरे में से ही जान लेता है न कि हर स्टेशन पर जाता है। इसी प्रकार चेतन एक जगह रहकर शरीर भर की स्थिति को जानता है। यदि शरीर भर में व्यापक है तो बच्चे के शरीर का चेतन उसके जवान होने पर क्या शरीर परिमाण बढ़ता जाता है? यदि ऐसा है तो चेतन विकारी है और विकारी वस्तु अविनाशी नहीं होती। यदि चेतन सर्वत्र व्याप्त है तो शरीर मुरदा क्यों हो जाता है? अन्तःकरणोपाधि कहना व्यर्थ है, अन्तःकरण तो जड़ है। चेतन सर्वत्र व्याप्त होगा तो अनेक न होकर एक होगा। यदि एक है तो कौन, किससे, क्यों और क्या पूछ रहा है? धर्म का प्रचार भी किसमें कौन कर रहा है?

154. प्रश्न—क्या गन्दी नाली में तड़पने वाले जीव को भी सबका द्रष्टा तथा सर्वोच्च कहा जा सकता है?

उत्तर—चाहे गन्दी नाली में तड़पता कीड़ा हो और चाहे गद्दी पर बैठा राजा हो, दोनों का मूलतः स्वरूप सर्वोच्च चेतन है। मनुष्य के अतिरिक्त खानि के जीव तो स्वस्वरूप को समझ नहीं सकते। मनुष्य खानि में रहे हुए जीव भी सब अपने स्वरूप को नहीं समझते। धन, विद्या तथा ऐश्वर्य में महान मानव भी स्वरूपज्ञान बिना नाली के कीड़े से अधिक नहीं है। क्या नाली के कीड़े का चेतन तथा मानव तन का चेतन मूलतः भिन्न प्रकार का है? जहां तक अपने सर्वोच्च द्रष्टा स्वरूप को ठीक से समझकर उसमें स्थित होना विवेकी मानव ही कर सकता है।

मनुष्य की आत्मा को छोड़कर सर्वोच्च क्या हो सकता है? जो अपनी आत्मा से पृथक होगा उसका ज्ञान पांच इन्द्रियों से ही होगा और जो इन्द्रियों से जानने में आयें वे पांच विषय हैं। जो इन्द्रियों से जाना जाता है उसी का मनन, चिन्तन तथा निश्चय होता है। अतः अपनी आत्मा से पृथक वस्तु पंच विषय होगी। जो पंच विषय से परे होगा उसको मनुष्य जान नहीं सकेगा; क्योंकि पांच ज्ञानेन्द्रियों को छोड़कर छटां कोई जानने का साधन नहीं है।

हां, जो पांचों विषयों से पृथक है वह अपना चेतन स्वरूप है जो इन्द्रियों से नहीं जाना जाता, अपितु वह इन्द्रियों द्वारा विषयों को जानता है। जब वह विषयों से अपने को घुमा लेता है तब अपने द्रष्टा स्वरूप में स्थित हो जाता है।

155. प्रश्न—बुद्ध का मध्यम मार्ग क्या है?

उत्तर—बीच का रास्ता 'मध्यम मार्ग' कहलाता है। इसमें घोर तपस्या तथा अधिक काया-कष्ट का विरोध है और इसकी दूसरी छोर की विलासिता का भी विरोध है। बौद्ध दर्शन में दुखनिरोध एवं मोक्ष के आठ अंग या मार्ग बताये गये हैं—(1) सम्यक दृष्टि (ज्ञान), (2) सम्यक संकल्प, (3) सम्यक वचन, (4) सम्यक कर्मात्, (5) सम्यक आजीव (निर्वाह), (6) सम्यक व्यायाम, (7) सम्यक स्मृति तथा (8) सम्यक समाधि। ये अष्टांगिक मार्ग कहलाते हैं जो सार्वजनीन हैं। बस, यही है मध्यम-मार्ग। यह विलासिता तथा घोर तप—दोनों से परे है। इसी को अद्वय भी कहते हैं, दोनों अतियों से परे।

156. प्रश्न—स्वामी शंकराचार्य अद्वैतवादी थे, लेकिन उन्होंने भजगोविन्दम् का नारा क्यों लगाया ?

उत्तर—स्वामीजी ने अद्वैतवादी होकर भी गोविन्द क्या गंगा-यमुनादि नदियों तक की वन्दना की है। वे यह मानते हैं कि तत्त्वदृष्टि से सब एक ब्रह्म होते हुए भी व्यवहार में अनेक हैं।

वस्तुतः हम समाधि में अकेले हो सकते हैं। संसार की अनेकता का अपलाप असम्भव है।

157. प्रश्न—अपना बोध कैसे हो, उसमें हमें क्या करना है?

उत्तर—सत्संग, सद्ग्रन्थ अध्ययन तथा चिन्तन करने से अपने आपका बोध एवं ज्ञान होता है और तत्पश्चात् विषयों से वैराग्य होने पर अपने आप में सन्तुष्टि होती है। इसके लिए धर्माचरण, स्वच्छता, सत्संग, सदाचार के पथ पर चलना चाहिए और ध्यानाभ्यास करना चाहिए।

158. प्रश्न—अविचल पारख में वासा हो, इसका अभिप्राय क्या है?

उत्तर—जब मन का विषयों में भटकना छूटकर वह शान्त हो जाता है, तब विवेकी पुरुष अपने चेतनस्वरूप की स्थिति में ही निरन्तर विराजता है; अर्थात् वह सदैव अपने आप में ही तृप्त रहता है—यही अविचल पारख में वासा है।

159. प्रश्न—निज स्वरूप कैसे जाना जाये?

उत्तर—चेतन ही अपना निज स्वरूप है। वही सबको जानता है। उसे

जानना क्या है? हां, सत्संग द्वारा यह समझना है कि मैं ही सबका ज्ञाता ज्ञानस्वरूप चेतन हूं।

160. प्रश्न—हमारा मूल तत्त्व क्या है?

उत्तर—हमारा चेतन स्वरूप, अर्थात् हम स्वयं, जो ज्ञानमय है।

161. प्रश्न—हम गृहस्थी में रहकर उस पद को कैसे प्राप्त कर सकते हैं जो कि एक वैराग्यवान को प्राप्त है और हम वैरागी कैसे बन सकते हैं?

उत्तर—जो विषयासक्ति त्यागकर शुद्ध ब्रह्मचर्यव्रत पालन करता है और प्रपंच-प्रवृत्ति को कम करके निर्वाह-मात्र का धन्धा करते हुए सत्संग, भक्ति, विवेक, वैराग्यादि साधना से चलता है, वह गृहस्थी में रहकर भी जीवन्मुक्त हो सकता है। जिसे विषयों में दोष तथा दुखों के निरन्तर दर्शन होते हैं, वह विरक्त हो जाता है। गृहस्थ ही तो विरक्त होता है।

162. प्रश्न—कबीर साहेब गुरुभक्त थे तो उन्होंने बीजक में गुरुवंदना क्यों नहीं की?

उत्तर—कबीर साहेब यह जानते थे कि साधारणतया मनुष्य का कल्याण बिना सद्गुरु के नहीं हो सकता; इसलिए उन्होंने बीजक में सद्गुरु तथा संतों की महत्ता का वर्णन किया है। परन्तु वे स्वयं एक महान दिव्य दृष्टि वाले पुरुष थे और अपने सत्य स्वरूप को स्वयं शोध लिए थे। यह ठीक है कि प्राप्त समसामयिक पुस्तकें, महापुरुष, मान्यताएं, प्रकृति की घटनाएं उनके स्वरूपबोध में सहायक रहे होंगे; परन्तु विशेषतर उनके पूर्वजन्मों के शुभ संस्कार तथा परखने की स्वतः पैनी दृष्टि ही मुख्य रहे। अतः उनका कोई सीधा गुरु नहीं था। स्वामी रामानन्द जी को भी उनका तत्त्वतः गुरु नहीं कह सकते; क्योंकि इनके विषय में बीजक में उन्होंने स्वयं कहा है—

रामानन्द रामरस माते। कहहिं कबीर हम कहि कहि थाके ॥

(बीजक, शब्द 77)

अतः जब उनका कोई गुरु नहीं था, तब वे किसकी वंदना करें! इसीलिए बीजक में वंदना नहीं है। वे स्वयं बोधवान थे।

163. प्रश्न—सत्युग, त्रेता, द्वापर तथा कलियुग में यदि कबीर सत्सुकृत, मुनीन्द्र, करुणामय और कबीर नाम से आये तो साहेब भी मुक्त नहीं हुए?

उत्तर—जो लोग कबीर साहेब को चारों युगों में आना मानते हैं वे सद्गुरु कबीर को नित्य मुक्त सर्वसमर्थ और सर्वज्ञ मानते हैं। हां, यह कहो कि यह

राम, कृष्ण, ईसा आदि के मानने वालों की तरह श्रद्धातिरेकवादियों की कल्पना है। मुक्त पुरुष पुनः नहीं आता।

*

*

*

164. प्रश्न—जब वृक्षों में जीव नहीं मानते तो चौरासी लाख योनि कैसे सिद्ध होगी?

उत्तर—न सिद्ध हो, क्या नुकसान? वैसे पारखी संत मनुष्य, पशु, अण्डज, उष्मज—इन चारों की राशियों (ढेरियों) को चौरासी कहते हैं। योनियां चौरासी लाख हैं—यह भी कैसे माना जाये? कम-बेसी भी हो सकती हैं।

165. प्रश्न—कर्म जड़ है तो जीव को सजा कौन देता है?

उत्तर—स्थूल रूप में एक मनुष्य दूसरे को सजा देता है; परन्तु मुख्यतः तो अपने कर्म संस्कार ही अपने को सुख-दुख देते हैं। लहसुन-प्याज खाने के बाद दुर्गन्ध अपने आप आती है। टेपरिकार्डर में जो शब्द भर लिया जाता है यद्यपि वह जड़ है, किन्तु आवाज उसी की आती है। कोई सर्वसमर्थ कर्मफल देता है यह कोरी कल्पना है। वह जब संसार का सुधार नहीं कर सकता तब कर्मफल देने का उसे क्या अधिकार है? लोकधारणानुसार वह सर्वसमर्थ, सर्वज्ञ पुरुष हत्यारों, जेबकटों, व्यभिचारियों, डाकुओं, गाय काटनेवालों में भी व्याप्त होकर उनका आज तक कुछ सुधार नहीं कर सका, फिर उसकी कल्पना आशा मात्र नहीं तो क्या है?

अतः अपने कर्म स्वयं सुधारो।

करु बहियाँ बल आपनी, छाड़ बिरानी आस।

जाके आँगन नदिया बहै, सो कस मरै पियास ॥

(बीजक, साखी 277)

166. प्रश्न—रंगभूमि जब सिय पगु धारी। देखि रूप मोहे नर नारी ॥ मोहै न नारि नारि के रूपा। पन्नगारि यह नीति अनूपा ॥

यह विरोध क्यों?

उत्तर—पहली चौपाई में मोहने का अर्थ हलके रूप में लिया गया है। सीता और राम को देखकर सब नर-नारी मोह गये, प्रसन्न हो गये। दोनों की जोड़ी देखकर विकार-ग्रस्त नहीं हो गये। परन्तु निचली चौपाई के मोह का अर्थ गहरे से लिया गया है। नारी के रूप को देखकर दूसरी नारी मोहग्रस्त, विकारी व कामातुर नहीं होती।

167. प्रश्न—एक जन्म में मनुष्य 'पुरुष' योनि में है तो दूसरे जन्म में किस योनि में उत्पन्न होगा?

उत्तर—जैसा उसका कर्मसंस्कार होगा।

168. प्रश्न—समस्त योनियों में भ्रमण करने के पश्चात जीव का क्या होता है?

उत्तर—यदि सब वासनाएं मिटाकर व्यक्ति स्वरूपस्थिति को पा गया तो वह मुक्त हो जायेगा; अन्यथा वासना-वश उन्हीं योनियों में भटकता रहेगा।

169. प्रश्न—जीवन-मरण से छुटकारा मिलता है, इसका प्रमाण क्या?

उत्तर—हर क्रिया का मूल वासना है। जब देह की वासना ही नहीं, तब देह में क्यों आयेगा?

170. प्रश्न—मनुष्य क्या है?

उत्तर—जड़तत्त्व निर्मित शरीरधारी विवेक-सम्पन्न चेतन जीव।

171. प्रश्न—मनुष्य जीवन का उद्देश्य क्या है?

उत्तर—दृश्यमान प्रकृति से लौटकर अपने आप में स्थित हो जाना, समस्त अभावों का अभाव, इच्छाओं का अन्त तथा स्वरूपस्थिति।

172. प्रश्न—वह मार्ग कौन-सा है जिस पर चलकर मनुष्य अपने और अपनों का जीवन सफल बना सकता है?

उत्तर—पवित्र चरित्र का निर्माण। इसके लिए सत्संग तथा सद्ग्रन्थों का अध्ययन आवश्यक है, फिर निरन्तर विचार।

173. प्रश्न—वे शुभ कर्म कौन-से हैं जिनके बिना मनुष्य की साधना पूरी नहीं हो सकती?

उत्तर—दया, क्षमा, सत्य, शील, अहिंसा और विचार।

174. प्रश्न—बालक-बालिकाओं का चरित्र निर्माण किस प्रकार किया जा सकता है?

उत्तर—स्वयं सच्चरित्र होकर।

175. प्रश्न—क्या विदेहमुक्त पुरुष संसार का कोई उपकार कर सकते हैं?

उत्तर—वे अपनी रहनी और वचन से सदेह काल जीवन्मुक्ति दशा में लोगों को प्रेरणा देते हैं, विदेहमुक्ति काल में उनका संसार से सम्बन्ध नहीं। हां, उनके

सदेहकाल जीवन्मुक्ति दशा का स्मरण कर पीछे से बहुत काल तक लोग प्रेरणा लेते रहते हैं।

176. प्रश्न—अभिमान और क्रोध कैसे दूर हों?

उत्तर—शरीर, जवानी, रूप, बल, परिवार, कीर्ति, अधिकार, धन—सब कुछ नाशवान है। 'यह सब मेरा नहीं है' यह जानकर अभिमान दूर हो जाता है। अभिमान, स्वार्थकामना, स्वभाववश तथा अपनी त्रुटियों पर न ध्यान देने से क्रोध आता है। जितने-जितने अभिमान और स्वार्थकामना कम होंगे, अपने स्वभाव पर सावधानी रखी जायेगी तथा अपनी त्रुटि देखने में आयेगी, उतना-उतना क्रोध कम होता जायेगा। उक्त कारणों के सर्वथा अन्त होने पर क्रोध की सर्वथा समाप्ति हो जायेगी; परन्तु जीवनपर्यन्त सावधान रहना पड़ेगा; क्योंकि जब तक शरीर है, तब तक भूलने का साधन है।

177. प्रश्न—साधन के अभाव में सेवा कैसे की जाये?

उत्तर—साधन का सर्वथा अभाव किसी के पास नहीं है। मनुष्य की यह भयंकर भूल है कि जो साधन उसके पास नहीं है उसकी कल्पना करता है और जो है उसका दुरुपयोग करता है। जिसके पास धन नहीं है या कम है वह सोचता है कि हमारे पास यदि धन होता तो मैं उसे खूब धर्म-परोपकार में लगाता; परन्तु उसके पास स्वस्थ शरीर है और वह उससे किसी की सेवा नहीं करता। ऐसे हर साधन के लिए समझ लीजिए। फिर वह व्यक्ति कुछ-न-कुछ खाता-पहनता है। उसे चाहिए उसी में से कुछ परोपकार या सेवा में लगाये। गरीब की कौड़ी धनी के करोड़ों से कम नहीं है। फिर मन तो सबके पास है। मनुष्य को चाहिए कि वह अपने मन से सबकी हितकामना करे।

178. प्रश्न—जब मनुष्य का मन सांसारिकता से ऊब जाये तब क्या करे?

उत्तर—विषयों से विरक्त होकर सत्संग में निवास करते हुए शांति प्राप्त करे।

*

*

*

179. प्रश्न—क्या विज्ञान और धर्म में सामंजस्य हो सकता है?

उत्तर—हो सकता है। विज्ञान भौतिक क्षेत्र का उन्नायक है और धर्म आध्यात्मिक क्षेत्र का। कितने लोग विज्ञान का नाम सुनकर जल जाते हैं और कितने धर्म का। ये दोनों एकांगी हैं। कितने तथाकथित धर्मावलम्बी विज्ञान की निन्दा करते नहीं थकते; परन्तु वे विज्ञानप्रदत्त टार्च, माचिस, घड़ी, बिजली, प्रेस, मोटर, रेल, वायुयान, ट्रांजिस्टर, रेडियो, टेपरिकार्डर आदि अगणित

वस्तुओं का उपयोग करते हैं। इसी प्रकार कितने ही भौतिकवाद और विज्ञान के प्रमादी धर्म की शतसहस्र मुख से निन्दा करते हैं। परन्तु धर्म वह वस्तु है जिसके बिना मानव मानव न रहकर दानव हो जायेगा। जीवन में हर दिशा के सत्कर्तव्य ही धर्म है। दया, शील, क्षमा, शम, दम, अस्तेय, पवित्रता, सत्यता, क्रोधहीनता, निर्भयता आदि सद्गुण धर्म कहे जाते हैं। धर्म वह वस्तु है जिससे मन, वाणी तथा कर्म निर्मल होकर मन वासनाहीन होता है जिससे जीवन का चरम लक्ष्य शांति की प्राप्ति होती है। भौतिकवादी नींद की गोली खाने की अपेक्षा यदि धर्म के स्थूल साम्प्रदायिक अंगों—पूजा, नमाज, कथा, कीर्तन को ही अपना लें, तो रात में सुख से सो सकेंगे और यदि धर्म का वास्तविक स्वरूप धारण कर लिया जाये तो जो गाढ़ी निद्रा में शांति रहती है वह जाग्रतकाल के व्यवहार में ही आ जाये और मनुष्य महाशांति का भण्डार हो जाये।

मनुष्य का बाहरी खोल भौतिक है। उसका असली स्वरूप शुद्ध चेतन है जो 'मैं' के रूप में शरीर में विराजमान है। चेतन की चेतनावृत्ति ही विज्ञान है जो जड़ पदार्थों के वर्गीकरण और उनके गुण-धर्मों की खोज में तथा उनके द्वारा अनेक वस्तुओं के निर्माण में व्यस्त है; और इसकी जीवन निर्वाह में आवश्यकता है। धर्म कहते हैं स्वभाव को। चेतन का स्वभाव ज्ञान है; अतः ज्ञान ही मुख्य धर्म है। ज्ञान द्वारा 'पर' को 'पर' समझ, उससे विरक्त होकर 'स्व' में अखण्ड तृप्त हो जाना, धर्म का फल है। इस प्रकार धर्म और विज्ञान एक सिक्के के दो पहलू हैं। चेतन की वही चेतनावृत्ति जब जड़ पदार्थों, उनके गुण-धर्मों की खोज तथा निर्माण में लगती है तब विज्ञान कहलाती है और वही चेतनावृत्ति जब चेतन स्वरूप को जड़ से पृथक सिद्ध करके और जड़वर्ग से विरक्ति कराकर चेतन को अपने स्वरूप में अवस्थित कराती है तब 'धर्म' कहलाती है। अतएव भौतिक क्षेत्र के मंगल के लिए विज्ञान की आवश्यकता है और आध्यात्मिकता के सर्वोच्च शिखर—स्वरूपस्थिति पर पहुंचने के लिए धर्म की आवश्यकता है।

वास्तविक धर्म की अवहेलना करके धर्म के नाम पर झूठे आडम्बर बढ़ाकर स्वार्थियों ने सदैव से ईर्ष्या, घृणा, गालीगलौज और रक्तपात किया है। इसी प्रकार विज्ञान के मंगलकारी उपयोगों को भुलाकर स्वार्थियों, क्रूरों एवं विज्ञान के बौखलाये पक्षधरों तथा महंतों ने विलास और संहार के अतुल साधन बनाकर मानवता को ज्वालामुखी पर ला बैठाया है। इनमें दोष सच्चे धर्म और विज्ञान का नहीं है, उनके दुरुपयोग करने वाले स्वार्थियों का है।

विज्ञान का तात्पर्य केवल वायुयान तथा रेडियो आदि बनाना ही नहीं है। हम जमीन से एक डेढ़ हाथ ऊपर सोना चाहते हैं; तो आठ लकड़ियों को ऐसा

संयुक्त करते हैं जिसमें रस्सी लपेटकर सो सकें। कहा जाता है कि ऐसा भी युग था जब लोग भोजन पकाना नहीं जानते थे और सब चीज कच्ची खाते थे; परन्तु पीछे से विज्ञान द्वारा ऐसा विधान बनाया गया कि हर खाद्य वस्तु ठीक से पकायी जाये। विज्ञान और धर्म अनादि हैं। उनका आविर्भाव और तिरोभाव तथा न्यूनाधिक्य होता रहता है। अतएव विज्ञान जीवन निर्वाह के हर क्षेत्र में समाया हुआ है, उसको हम जीवन से हटा नहीं सकते और धर्म के बिना न मानव मानव रह सकता है और न उसे जीवन का चरम लक्ष्य (शांति) मिल सकता है। विज्ञान शरीर है, धर्म जीव है। एक के बिना दूसरा कोई मंगलकार्य सम्पादित नहीं कर सकता। अतएव स्वयं समझा जा सकता है कि धर्म और विज्ञान का कितना सामंजस्य है।

180. प्रश्न—हंसदेह में शुद्ध त्रिगुण क्या है? क्या इन पर चलने से मोक्ष हो सकता है?

उत्तर—मानवदेह में चेतना संयुक्त सद्गुणों का समुच्चय ही 'हंसदेह' है। उसके त्रिगुण हैं—विवेक, वैराग्य और भक्ति। सत और असत एवं चेतन तथा जड़ को ज्ञान द्वारा पृथक् समझना विवेक है। असत एवं जड़ से उपरत तथा अनासक्त होना वैराग्य है। सत एवं चेतन स्वरूप की ओर झुकाव होना भक्ति है। 'स्व' और 'पर' को जानकर 'पर' से विरत हो 'स्व' में स्थित हो जाना ही मोक्ष है। तो ये त्रिगुण मोक्ष के साधन हैं ही।

181. प्रश्न—पहले सेवा करें कि प्रेम?

उत्तर—प्रेम। बिना प्रेम के सेवा नहीं होगी।

182. प्रश्न—गृहस्थी में रहकर पहले माता-पिता की सेवा करे कि गुरु की?

उत्तर—जब जिनकी सेवा का अवसर पड़े।

183. प्रश्न—जीवन क्या है और उसका उद्देश्य क्या है?

उत्तर—स्थूल जीवन जड़-चेतन का संगमकाल है। इसका उद्देश्य है जड़प्रकृति से अनासक्त होकर अपने चेतन स्वरूप में स्थित हो जाना।

वस्तुतः व्यक्ति का आत्मिक जीवन शुद्ध चेतन है, जो अनादि और अनन्त है। जो अपने अनादि-अनन्त आत्मिक जीवन को समझ लेता है उसकी दृष्टि में शरीर बादल की छाया के समान अपने से दूर, क्षणिक और स्वप्नवत दिखता है। वह सदैव शोकमुक्त अमृतमय है। विशेष समझने के लिए 'जीवन क्या है?' पढ़िए।

184. प्रश्न—कहते हैं कर्म करो, फल की आशा छोड़ दो। अगर कर्म करते-करते शरीर छूट गया तो फल कब मिलेगा?

उत्तर—जब फल की आशा व्यक्ति छोड़ देगा तब फल कब मिलेगा, यह पूछना निरर्थक है। यदि आशा है तो भी शरीर छूट जाने से कोई अड़चन नहीं। पाठ याद करते-करते विद्यार्थी सो जाये तो कोई हानि नहीं। सो करके उठेगा और उसे पाठ याद मिलेगा। मर जाना थोड़े काल के सोने के समान है। कर्मों का फल जन्मान्तर में चलता रहता है। अतः शुभ कर्म करते चलो।

185. प्रश्न—वह कौन-सा कर्म है जो सबसे श्रेष्ठ है?

उत्तर—अनासक्तिपूर्वक परोपकार।

186. प्रश्न—अध्यारोप और अपवाद किसे कहते हैं?

उत्तर—एक वस्तु के गुण-धर्म का भ्रमवश अन्य वस्तु में आरोप करना—अध्यारोप कहलाता है, जिसे अध्यास और मिथ्याज्ञान भी कहते हैं; जैसे रस्सी में सर्प का अध्यारोप एवं मिथ्याज्ञान। अपवाद कहते हैं खंडन को। जैसे यह कहना कि रस्सी में सर्प नहीं है। ये दोनों शब्द वेदांत में अधिक चलते हैं। ब्रह्म में जगत का अध्यारोप और अपवाद होता है।

187. प्रश्न—सत्य का श्रवण करने के बाद भी व्यक्ति को संतोष क्यों नहीं होता?

उत्तर—क्योंकि उसने जो सुना है उसे अपने जीवन में उतारा नहीं।

188. प्रश्न—पतित मनुष्य सरलता से कैसे उठे?

उत्तर—सत्संग, सद्ग्रन्थ तथा साधना का आधार पकड़कर।

189. प्रश्न—सद्गुरु कबीर साहेब को धार्मिक, सामाजिक एवं राजनैतिक सुधारक कहते हैं। धार्मिक एवं सामाजिक कहना तो ठीक है; लेकिन राजनीति में कौन-कौन-सा काम किये हैं यह समझ में नहीं आता जैसा कि चाणक्य जी ने किया था?

उत्तर—सद्गुरु कबीर के स्तर के जो महापुरुष होते हैं उनका कार्य भले ही धार्मिक तथा सामाजिक हो, किन्तु वह इतना व्यापक रूप ले लेता है जिसका प्रभाव राजनीति पर पड़े बिना नहीं रहता। बुद्ध, महावीर, कबीर, नानक, तुलसी, दयानन्द, विवेकानन्द आदि शीर्ष संतों का प्रभाव राजनीति पर पड़े बिना नहीं रहा। यहां कबीर साहेब पर प्रश्न है। उनके विषय में प्रसिद्ध इतिहासकार पं० सुन्दरलाल लिखते हैं—

“कबीर पहले भारतवासी हैं जिन्होंने हिन्दू और मुसलमानों दोनों के लिए; बल्कि सारी मानव जाति के लिए एक सामान्य धर्म का निर्भीकता के साथ उपदेश दिया।”

“मुगल साम्राज्य के दिनों में कबीर के विचार बराबर फैलते गये। यहां तक दूरदर्शी सम्राट अकबर ने ‘दीने-इलाही’ के रूप में उन्हें सर्वस्वीकृत कराने की कोशिश की। वास्तव में कबीर ही अकबर के मानसिक पिता थे। विधि ने देश के भीतर तथा भारत की परिस्थिति ने कबीर और अकबर को पूरी तरह सफल न होने दिया; परन्तु भारत की आत्मा भीतर से पुकार रही है—यदि सत्य है तो यही है और यदि भविष्य के लिए मार्ग है तो केवल यही है।”

“कबीर के विचारों की मौलिकता और महानता के कारण कबीर के समय से फिर एक बार उत्तर भारत ने धार्मिक विचारों के मैदान में सारे भारत का नेतृत्व अपने हाथ में लिया और कबीर ही के विचार अनेक संतों और महात्माओं द्वारा एक बार उत्तर से दक्षिण तक समस्त भारत में फैलने लगे।”

(भारत में अंग्रेजी राज्य : मानवधर्म)

चाणक्य मुख्य राजनीतिक थे, इसलिए उन्होंने राष्ट्र के लिए कूटनीति, युद्ध, हत्या, आदि सब कुछ का प्रयोग किया जैसा कि राजनीतिक लोग करते हैं। वे अपने युग में भारत की राजनीति, स्वराज्य और शासन दुनिया में चमका दिये थे। कबीर साहेब संत थे। उनके एकतापरक उपदेश का प्रभाव राजनीति और सभी क्षेत्रों में पड़ा।

190. प्रश्न—अलख निरंजन क्या है?

उत्तर—अलख कहते हैं जो देखने में न आये और निरंजन का अर्थ निर्दोष या मायारहित है। इस प्रकार ‘अलख निरंजन’ शुद्ध चेतन के लिए प्रयुक्त हो सकता है। परन्तु सद्गुरु कबीर ने बीजक में अलख निरंजन को मनःकल्पित वस्तु कहा है और उसका खण्डन किया है; यथा “अलख निरंजन लखै न कोई। जेहि बंधे बंधा सब लोई।” (रमैनी 22)

191. प्रश्न—तीन लोक किसे कहते हैं?

उत्तर—स्वर्ग, पाताल और मृत्युलोक को। मृत्युलोक तो यही है; स्वर्ग और पाताल कल्पित हैं। वस्तुतः जहां हम हैं वह और इसके ऊपर तथा नीचे तीनों लोक हैं। इसका लाक्षणिक अर्थ है विश्व की समग्रता। दूसरे अर्थ में सत, रज, तम को ही तीन लोक कहना चाहिए।

192. प्रश्न—आत्मा और परमात्मा में क्या भेद है?

उत्तर—अज्ञान का। आत्मा ही विषयनिवृत्त होने पर परमात्मा है।

193. प्रश्न—मोक्ष का अधिकारी कौन है?

उत्तर—जिसे स्वरूप का ठीक ज्ञान तथा विषय वासनाओं का सम्यक त्याग है।

194. प्रश्न—यदि मैं शरीर नहीं हूँ, तो निज स्वरूप की झलक क्यों नहीं होती?

उत्तर—क्योंकि मन बहिर्मुखी है। अतः उसे अन्तर्मुखी करो।

195. प्रश्न—“पूजिय विप्र शील गुणहीना। शूद्र न गुण गन ज्ञान प्रवीना ॥” क्या सद्गुण रहित ब्राह्मण को पूजना चाहिए और क्या परम विवेकी शूद्र को नहीं पूजना चाहिए?

उत्तर—न कोई जन्म से ब्राह्मण है न जन्म से शूद्र। विवेकी ही ब्राह्मण है और वही पूज्य है। अविवेकी ही शूद्र है, वह पूज्य नहीं, दया का पात्र है।

196. प्रश्न—मानव आधुनिकता के परिवेश में किस तरफ जा रहा है?

उत्तर—हृदय से हटकर मस्तिष्क की तरफ। इसके चिंतन में एक ग्रंथ बन सकता है, कम से कम एक लेख तो सहज ही बन सकता है।

197. प्रश्न—समाज और सभा में क्या अन्तर है?

उत्तर—जिसमें सब मनुष्य साथ-साथ एक-दूसरे की सहायता करते हुए चलते हैं, वह समाज है। समाज में उत्तम-मध्यम सब हैं।

‘स’ कहते हैं सहित को और ‘भ’ कहते कांति एवं तेज को। इस प्रकार जो कांति एवं तेज के सहित हो वह सभा है। वस्तुतः तेजवानों की समष्टि ही सभा है।

वैसे सभा और समाज का एक अर्थ भी किया जा सकता है। परिभाषाएं अनेक हैं, इसके लिए विवाद नहीं करना चाहिए। मुझे पहली वाली परिभाषा अधिक जंचती है।

198. प्रश्न—प्रेम, भक्ति और सेवा में श्रेष्ठ कौन? शुरुआत किसकी होती है?

उत्तर—एक दृष्टि से प्रेम भौतिक है, भक्ति आध्यात्मिक है। प्रेम की शुरुआत प्रेमी और प्रिय के आमने-सामने होने पर होती है, भक्ति की शुरुआत श्रद्धेय के सद्गुणों को सुनकर या उसका कृत्य देखकर दूर से भी हो जाती है। प्रेम अधिक आकर्षक है, परन्तु संकुचित तथा क्षणिक है। भक्ति अपेक्षया कम आकर्षक है, परन्तु उदार और स्थायी है। प्रेमी अपने प्रेमपात्र को अपने में ही

समेत रखना चाहता है, परन्तु भक्त अपने श्रद्धेय को संसार भर में उघाड़ देना चाहता है। प्रेम स्वार्थपरक है, भक्ति परमार्थपरक।

वैसे प्रेम और भक्ति का अर्थ एक भी किया जा सकता है; सद्गुरु कबीर कथित ढाई अक्षर का प्रेम सार्वभौमिक है। जितना स्वार्थ घटता है उतना प्रेम बढ़ता है। विश्व प्रेम सार्वभौमिक और उदार है। पहले प्रेम या भक्ति होती है तब हम अपने प्रेमपात्र या भक्तिपात्र की सेवा करते हैं।

199. प्रश्न—मनुष्य क्यों मरता है, क्या कोई उसे मारता है?

उत्तर—प्रारब्ध भोग पूरा होने पर मनुष्य स्वयं मरता है।

200. प्रश्न—जीव का आवागमन कैसे मिट सकता है?

उत्तर—अपने स्वरूप को समस्त दृश्यों से भिन्न, व्याप्य-व्यापक, अंश-अंशी तथा कारण-कार्य से सर्वथा पृथक् शुद्ध चेतन समझकर जब समस्त वासनाएं त्याग दी जाती हैं, तब द्रष्टा चेतन अपने आप शांत हो जाता है, यही मोक्ष है।

201. प्रश्न—भक्तिमार्ग, ज्ञानमार्ग तथा कर्ममार्ग—तीनों में श्रेष्ठ मार्ग कौन है?

उत्तर—ज्ञानमार्ग श्रेष्ठ है; परन्तु कर्म तथा भक्ति के बिना ज्ञान की परिपक्वता नहीं हो सकती। अतएव ज्ञान के लिए कर्म और भक्तिमार्ग की भी आवश्यकता है।

202. प्रश्न—मुक्त पुरुष की आत्मा मृत्यु के समय इस देह को छोड़ती है अथवा देह ही छोड़ती है? क्योंकि आत्मा स्वरूप से निष्क्रिय है और छोड़ना क्रिया।

उत्तर—जीवन्मुक्त के प्रारब्धान्त में सूक्ष्मशरीर तथा प्रारब्धग्रंथि समाप्त हो जाते हैं, मुक्त चेतन अपने आप रह जाता है। उसे न कुछ छोड़ना है और न पकड़ना। वह असंग, निराधार और अकेला है।

203. प्रश्न—विषयों से विरक्त होने का उपाय क्या है?

उत्तर—उनमें दुख एवं दोषों का दर्शन।

दोषदृष्टि जबही भई, तब उपज्यो वैराग।

दृढ़ निर्वेद जाको भयो, सोइ मुमुक्षु बड़ भाग ॥

(वैराग्य शतक)

204. प्रश्न—मायावशी सब जीव देह धारण करके जन्म के हिण्डोले में झूल रहे हैं। जो उनके द्रष्टा विवेकी पुरुष हैं वे भी देहधारी होने से उसी झूले पर हैं। फिर उससे वे अलग कहां?

उत्तर—डॉक्टर और रोगी दोनों अस्पताल में रहते हैं; परन्तु रोगी विवश है और डॉक्टर रोग का निवारणकर्ता रोगमुक्त है। दृष्टांत एक अंश पर है; क्योंकि समय से डॉक्टर भी रोगी हो जाता है; परन्तु विवेकी पुरुष भ्रमहिण्डोले से उतरकर एवं वासना त्यागकर शांत हो गये हैं। उनकी समस्त ऐषणाएं बुझ गयी हैं। अब वे पुनः भ्रम में पड़ने वाले नहीं हैं। वे देह में रहते हुए भी वस्तुतः विदेह हैं।

*

*

*

205. प्रश्न—पामर मन को निर्विषय कैसे किया जाये?

उत्तर—पहले तो विषयों के प्रति दोषदर्शन हो। फिर सदग्रन्थों का स्वाध्याय, सत्संग, वैराग्यवान पुरुषों का ध्यान तथा विवेक करते हुए शरीर की सारहीनता पर विचार करें।

कुसंग का त्याग अत्यन्त आवश्यक है; स्त्री-पुरुष साथ-साथ बने रहते हुए अर्थात् एकांत में दोनों के मिलते रहने से निर्विषय हो पाना कठिन है। अतः एकान्त में विजाति घट से न मिले।

ब्रह्मचर्य-हानि में जितनी हानि तथा ब्रह्मचर्य-पालन में जितना लाभ निश्चय होता जायेगा उतना ही व्यक्ति निर्विषय होता जायेगा; विषयवासना महा कीचड़ है, इससे अपने आपको निकालना प्रत्येक व्यक्ति का कर्तव्य है। क्योंकि बिना पूर्ण निर्विषय हुए सच्ची स्वतन्त्रता असंभव है।

206. प्रश्न—आपकी दृष्टि में नारियां क्या हैं?

उत्तर—सृष्टि के श्रेष्ठतम प्राणी, पुरुष के समान कल्याण-साधना के अधिकारी, निंदनीय नहीं, मां स्थानीय होने से वंदनीय।

207. प्रश्न—सुषुप्ति में जीव की वृत्ति कहां रहती है?

उत्तर—बीज रूप से हृदय में।

208. प्रश्न—जीव का विश्राम स्थान कहां है?

उत्तर—उसका अपना स्वरूप।

209. प्रश्न—शिक्षा-दीक्षा, गुरु-शिष्य, साधन-भजन सब द्वैत में चलता है, फिर क्या अद्वैत भ्रम नहीं है?

उत्तर—संसार विविधता से भरा है, इसलिए द्वैत है। संकल्पों के छूट जाने पर जब चेतन का अकेलापन होता है, उसी को अद्वैत कहते हैं। जड़-चेतन मिलाकर अद्वैत नहीं।

210. प्रश्न—स्वरूपस्थिति क्या है?

उत्तर—व्यवहारकाल में अहंकार से मुक्त तथा साधनाकाल में संकल्पों से मुक्त होना।

211. प्रश्न—साधु को कैसा होना चाहिए?

उत्तर—त्यागी, निर्मोही, अनासक्त, निर्मानी और परोपकारी।

212. प्रश्न—स्थिति-अभ्यास काल के समय कौन-सी सावधानी रखनी चाहिए?

उत्तर—मैं संकल्पों में बह न जाऊं।

213. प्रश्न—मनुष्य मेहनत से क्यों डरता है?

उत्तर—अज्ञान और सुखाध्यास-वश।

214. प्रश्न—शिक्षा का उद्देश्य क्या है?

उत्तर—आन्तरिक सद्गुणों का विकास।

215. प्रश्न—क्या शादीशुदा व्यक्ति का जीवन सार्थक है?

उत्तर—यदि वह संयम और धर्मपरायण है तो।

216. प्रश्न—मां-बाप बड़े हैं कि गुरु?

उत्तर—अपनी-अपनी जगह पर सब बड़े हैं।

217. प्रश्न—जीव अमर है तब बीजक में क्यों कहा गया 'जिव मति मारो बापुरा'?

उत्तर—जीव अवश्य अमर है वह नहीं मरता, परन्तु किसी देहधारी को चोट पहुंचाने से उसे कष्ट होता है, इसलिए कष्ट देने से रोका गया है।

218. प्रश्न—द्वैत, अद्वैत, विशिष्टाद्वैत किसे कहते हैं?

उत्तर—जीव, प्रकृति और ईश्वर—इन तीनों को सर्वथा पृथक-पृथक मानना द्वैत है। जड़-चेतन सब अंततः एक मानना अद्वैत है। जड़-चेतन (चित-अचित) को ईश्वर का अंश मानकर चित-अचित से ब्रह्म को श्रेष्ठ मानना विशिष्टाद्वैत है। इसका स्पष्ट विवरण 'कबीर दर्शन' के चौथे अध्याय में पढ़ें।

219. प्रश्न—आत्मनियंत्रण क्या है?

उत्तर—मन का अपने वश में होना।

220. प्रश्न—अध्यात्म एवं सद्गुरु का जीवन में क्या महत्त्व है?

उत्तर—सर्वोच्च।

221. प्रश्न—जीव का बंध होता है कि मन का?

उत्तर—मन का। वस्तुतः मन का बंध ही जीव का बंधन कहा जाता है।

222. प्रश्न—पारख रूपी अमृत प्राप्त होने पर भी मन में तरंगें क्यों उठती हैं?

उत्तर—वैराग्यपूर्वक स्वस्वरूप का बोध ही पारख का पाना है और ऐसा होने पर मन शांत हो जाता है। वाचिकज्ञान एवं बौद्धिकज्ञान का पाना पारख का पाना नहीं है।

223. प्रश्न—वासना ध्वंस कैसे हो?

उत्तर—गुरु-उपासना, विवेक, वैराग्य एवं चिंतन से।

224. प्रश्न—क्या उन्नति की लालसा नहीं रखनी चाहिए?

उत्तर—रखनी चाहिए; परन्तु अपना और पराये का कल्याण करना ही उन्नति है।

225. प्रश्न—दैविक ताप किस पाप से बनता है?

उत्तर—वाचिक पाप से दैविक ताप, मानसिक पाप से दैहिक ताप तथा शारीरिक पाप से भौतिक ताप होते हैं ऐसा निर्णय प्रसिद्ध है, परन्तु एकदम वर्गीकरण कर पाना कठिन है। हां, पाप का फल ताप है, इसलिए सभी प्रकार के पाप से बचना चाहिए।

226. प्रश्न—कबीर साहेब अपने शरीरान्त के दो सौ वर्ष बाद धर्म साहेब को दर्शन दिये, ऐसी धारणा बहुतों को है, सो कैसे?

उत्तर—भक्त अपने इष्ट को कल्पना में देखता है।

227. प्रश्न—क्या सद्गुरु कबीर निर्गुण राम को मानते थे?

उत्तर—वे स्वरूप राम को मानते थे, 'हृदया बसे तेहि राम न जाना।'

228. प्रश्न—जब मैं स्वरूपस्थिति करने बैठता हूं, तो मन कुछ देर शान्त रहता है, फिर चंचल हो जाता है, ऐसी स्थिति में क्या करूं?

उत्तर—विरक्त पुरुषों का ध्यान करो अथवा पाठ करो।

229. प्रश्न—स्थिति अभ्यास के समय नेत्र खुले अथवा बन्द रखना चाहिए?

उत्तर—बन्द रखना अच्छा है, परन्तु नींद न आनी चाहिए।

230. प्रश्न—स्थितिकाल में बाहरी आवाज सुनायी पड़ सकती है?

उत्तर—सुनायी पड़ेगी, परन्तु उसका चिन्तन नहीं होगा।

231. प्रश्न—जाग्रत में मोह नहीं रहता, किन्तु स्वप्न में क्यों होता है?

उत्तर—पुराने अभ्यास और असंयम के कारण। विवेक-वैराग्य के दीर्घकाल के अभ्यास से उनका शमन हो जाता है। वैसे स्वप्न की चिन्ता न करके जागृति में निर्मोह रहने का प्रयत्न करना चाहिए।

*

*

*

232. प्रश्न—पारख एक है कि अनेक?

उत्तर—पारख कहते हैं ज्ञानगुण को जो एक है; परन्तु उसको धारण करने वाले चेतन व्यक्तित्व में अनेक हैं।

233. प्रश्न—गांजा, भांग, तम्बाकू, बीड़ी आदि अंकुरज हैं, 'अंकुरज भखे सो मानवा'—ऐसा प्रमाण देकर कितने कहते हैं कि इनके खाने-पीने में दोष नहीं?

उत्तर—कहने वाले बेईमान हैं; क्योंकि ये मादक द्रव्य हैं और हर प्रकार से हानिकर हैं। सद्ग्रंथों में इनका भी तो निषेध है।

234. प्रश्न—मांसाहारी कहते हैं कि मनुष्य के अतिरिक्त देहधारी मनुष्य के खाने के लिए बनाये गये हैं, मांस में शक्ति है, इसलिए हम मांस खाते हैं?

उत्तर—जो खाते हैं और छोड़ना नहीं चाहते उनकी चिन्ता छोड़ दीजिए। आप स्वयं इससे बचिए और जो आपकी बातें माने उसे बताइए। संसार में सब प्रकार के लोग सब समय रहते हैं। अपना सिर पटकने की जरूरत नहीं है।

कोई प्राणी मनुष्य के खाने के लिए नहीं बनाया गया है। मनुष्य तो विवेकी है, जब वह स्वयं कष्ट नहीं चाहता तब दूसरे को कष्ट देना विवेक की बात कहां है? मांस से अधिक शक्ति मनुष्य को साग, सब्जियों, फलों, मेवों, अन्नों तथा दूध, घृत में मिलती है।

फार्म-6

235. प्रश्न—जीव के अविनाशी होने का क्या प्रमाण?

उत्तर—सारे भौतिक तत्त्व जड़ हैं, उनसे जीव नहीं बन सकता; इसलिए वह जड़ से सर्वथा पृथक है। पृथक होने से अजन्मा है और जो अजन्मा है वह अविनाशी है।

236. प्रश्न—पाप-पुण्य के कर्मफल जीव को लगते हैं इसका प्रत्यक्ष प्रमाण क्या है?

उत्तर—प्रत्यक्ष ही जीव सुख-दुख भोग रहे हैं।

237. प्रश्न—जीव सत्य है तो असत्य क्या है?

उत्तर—वासनाएं, जिसके निवारण से जीव मुक्त हो जाता है। सूर्य सत्य है और अन्धकार असत्य। सूर्य के उदय होते ही अन्धकार समाप्त हो जाता है। इसी प्रकार जीव सत्य है, वासनाएं असत्य। अतः स्वरूपज्ञान उदय होने पर वासनाएं समाप्त हो जाती हैं और जीव मुक्त हो जाता है।

238. प्रश्न—मन सूक्ष्म इन्द्रिय है या नहीं?

उत्तर—है।

239. प्रश्न—क्या सब खानियों के देहधारियों में दसों इन्द्रियां होती हैं?

उत्तर—सब खानियों के देहधारियों में दसों इन्द्रियां नहीं होतीं, केंचुआ आदि का उदाहरण प्रत्यक्ष है।

240. प्रश्न—मूर्तिपूजा किससे चली?

उत्तर—किसी न किसी प्रकार मूर्तिपूजा सदा रही है। विशेष बौद्धों और जैनों से चली।

241. प्रश्न—मूर्तिपूजा से हानि-लाभ क्या हैं?

उत्तर—जिनको कोई ज्ञान नहीं है, वे यदि सात्विक मूर्तिपूजन करते हैं तो बालक के चटुआ चाटने न्याय कुछ-न-कुछ उन्हें संतोष मिलता है; परन्तु चटुआ से बालक की भूख नहीं जाती, माता का दूध आवश्यक है। इसी प्रकार मूर्तिपूजन से सार मिलने वाला नहीं है, उसके लिए स्वरूपज्ञान और सद्साधना की आवश्यकता है।

मूर्तिपूजन में हानि यह है कि आदमी को विवेक नहीं होता और चेतन स्वरूप के ज्ञान रहित जीवनपर्यन्त जड़ का ही पुजारी बना रहता है। अतः मूर्तिपूजक को भी उससे आगे बढ़ना चाहिए।

242. प्रश्न—उपदेश और उपाय में क्या अन्तर है?

उत्तर—‘मन को शुद्ध करो’ यह कहना उपदेश है और मन को शुद्ध करने के लिए साधना करना उपाय है।

243. प्रश्न—आत्मशक्ति कैसे प्राप्त हो?

उत्तर—अपने आप को ठीक से पहचानने से।

244. प्रश्न—सारशब्द और पारख में क्या अन्तर है?

उत्तर—सारशब्द निर्णयवचन को कहते हैं और पारख ज्ञान गुण को, जो चेतन का स्वरूप है। यदि कोई स्वस्वरूप चेतन को ही सारशब्द कहता हो तो उसकी अपनी परिभाषा होगी। वैसे हम लोग पहले वाली ही परिभाषा मानते हैं।

245. प्रश्न—क्या जीव पिंड-ब्रह्माण्ड से परे हैं?

उत्तर—निस्सन्देह।

246. प्रश्न—दुनिया में कौन-सी वस्तु नाजुक पायी जाती है?

उत्तर—बहुत-सी, परन्तु जीव के सबसे निकट नाजुक शरीर है।

247. प्रश्न—आत्मा और मन को कैसे पहचाना जाये?

उत्तर—आत्मा कहते हैं स्वयं को, स्वयं तुम चेतन हो, सबको पहचानने वाले हो। मन तुम्हारा दृश्य है। तुम उसको देखकर त्याग दो तो तुम स्वयं रह जाओगे। इसके लिए विवेकी सद्गुरु की संगत करो।

248. प्रश्न—क्या ईश्वर है? यदि है तो क्या उसका प्रत्यक्षीकरण हो सकता है?

उत्तर—आपको जिसका प्रत्यक्षीकरण होगा वह माया होगी, पांच विषय होंगे, अतः छूटने वाले होंगे। ध्रुव, प्रह्लाद, अजामिल आदि को मिलने वाले ईश्वर के सारे उदाहरण निरे कल्पित हैं। इस स्वयं ज्ञाता चेतन के ऊपर कोई ईश्वर नहीं। अतः अपने ईश्वरत्व को समझो, अलग मत गिड़गिड़ाओ।

249. प्रश्न—समाचार पत्रों में आये दिन छपता रहता है कि अमुक जगह एक बच्चे ने अपने पूर्व जन्म के वृत्तान्त कहे। क्या यह हो सकता है?

उत्तर—यदि घटनाएं सही हैं तो ठीक है। पुनर्जन्म तो होता ही है। परन्तु मेरे सामने या प्रत्यक्ष जानकारी में ऐसी कोई घटना नहीं है। हो सकता है पुनर्जन्म सिद्धान्त को पुष्ट करने के लिए ऐसी कथाएं गढ़ी जाती हों।

250. प्रश्न—जब चेतन पारख स्वरूप ज्ञानमात्र है तब वह इन्द्रियों के विषयों में प्रभावित क्यों होता है?

उत्तर—अनादि अभ्यास तथा स्वस्वरूप के अज्ञानवश। सत्संग, सद्ग्रंथ सद्दिवेक से अज्ञान तथा आसक्ति को मिटाकर स्वरूपस्थिति प्राप्त करना चाहिए।

251. प्रश्न—क्या गृहस्थी में रहकर इसी जन्म में ही मुक्ति प्राप्त की जा सकती है? किस प्रकार?

उत्तर—गृहस्थी में रहने का अर्थ यदि विषयासक्ति में रहना है तो इसी जन्म में क्या, कभी मुक्ति की प्राप्ति नहीं होगी।

यदि व्यक्ति विषयासक्ति से पूर्ण मुक्त हो गया है तो कपड़ा चाहे गृहस्थ का हो और चाहे विरक्त का, कोई अन्तर नहीं पड़ता। मुक्ति प्राप्ति के लिए विषयासक्ति से पूर्ण छुटकारा, निवृत्ति और मन की एकाग्रता की आवश्यकता है। सद्ग्रंथों के मनन और सत्संग से सब ज्ञात हो जायेगा।

252. प्रश्न—कर्मयोग क्या है? क्या कर्मयोग के पूर्ण पालन से मुक्ति हो सकती है? एक गृहस्थ मुमुक्षु के लिए कर्मयोग की शिक्षा किस प्रकार की होगी?

उत्तर—निष्काम और अनासक्तिपूर्वक शुभकर्म करना कर्मयोग है। इस प्रकार शुभ कर्म करने से चित्त शुद्ध होता है। शुद्ध चित्त में ही विवेक-वैराग्य उदित होकर वासनाएं शान्त हो जाती हैं और व्यक्ति जीवन्मुक्त हो जाता है। फिर जीवन्मुक्त पुरुष भी जीवनपर्यन्त कुछ-न-कुछ लोकहिताय कार्य करता ही है।

गृहस्थ-मुमुक्षु को चाहिए कि घर, धन, जमीन, स्त्री, पुत्र, पति, परिवार आदि की आसक्ति छोड़कर उन सबके प्रति उचित कर्तव्य पालन करे। कर्तव्य कर्मों को करते हुए सब कुछ को स्वप्नवत समझकर अनासक्त, असंग रहे।

253. प्रश्न—पारख समाधि के अभ्यास के लिए किस समय का निर्धारण सर्वोत्तम होगा?

उत्तर—प्रातःकाल का। वैसे जब समय मिले तभी ठीक है। इसके लिए मन को सब प्रकार से दबावरहित, सरल, शुद्ध एवं संयत रखना अत्यन्त आवश्यक है।

254. प्रश्न—अभ्यास कितने घंटे हो?

उत्तर—जितना सध सके। अधिक-से-अधिक जितना बन सके इसमें रहना ही तो जीवनलाभ है।

255. प्रश्न—मन, अन्तःकरण और सूक्ष्म शरीर क्या है?

उत्तर—अन्तःकरण तथा बाह्यकरण दो हैं। चक्षु आदि पांच ज्ञानेन्द्रियां बाह्यकरण हैं तथा अन्तःकरण वह सूक्ष्म साधन है जिससे भीतर सुख-दुखादि के अनुभव होते हैं। उस अन्तःकरण के ही कार्य भेद से चार नाम दिये गये हैं—मन, चित्त, बुद्धि और अहंकार। मनन से मन, अनुसन्धान से चित्त, निर्णय से बुद्धि तथा स्वीकार से अहंकार नाम पड़े हैं।

सूक्ष्म शरीर वासनाओं का वह समूह है जो जड़तत्त्वों के सूक्ष्म अंशों से ग्रथित जीव के साथ जन्म-जन्मांतर में भ्रमण करने वाला है। अन्तःकरण भी सूक्ष्म रूप में स्थित है। बारम्बार स्थूल शरीर छूटते रहने पर भी वह अन्तःकरण युक्त सूक्ष्म शरीर जीव को लेकर रहता है। जीव को स्थूल शरीर प्राप्त होने पर अन्तःकरण वृत्ति रूप में काम करता है और स्थूल शरीर छूट जाने पर अन्तःकरण सूक्ष्म शरीर के साथ बीज रूप में रहता है। पुनः शरीर मिलने पर वृत्ति रूप में काम करने लगता है।

256. प्रश्न—मानवता की चरम सीमा कहां तक है?

उत्तर—मानवता की अंतिमी सीमारेखा खींचना दुस्साहस मात्र होगा। जितना संभव हो परिश्रमी और परोपकारी होना चाहिए। अपने से जितना बन सके सहन, क्षमा तथा संतोष धारण करना चाहिए। हां, जीवन के अंतिमी उत्कर्ष पर ध्यान देते हुए कहा जा सकता है कि पूर्ण निष्काम एवं जीवन्मुक्त हो जाना ही मानवता की चरम सीमा है।

257. प्रश्न—क्या यहां पाप और पुण्य हैं, यदि हैं तो कैसे अनुभव करें?

उत्तर—पाप और पुण्य किसी स्थान, मकान या मैदान में नहीं रहते। उनका निवास मनुष्य के मन में होता है। जिन संकल्पों, कथनों तथा आचरणों के परिणाम में मन में प्रसन्नता आये वह पुण्य है। दूसरे को दुख देना और अपना चरित्र गिराना पाप है तथा दूसरे को सुख देना और अपना चरित्र उठाना पुण्य है।

258. प्रश्न—आप अंतर्जातीय विवाह के पक्ष में हैं अथवा विपक्ष में? पक्ष में हैं तो क्यों, विपक्ष में हैं तो क्यों?

उत्तर—मैं तो किसी प्रकार के विवाह के पक्ष में नहीं हूं। ऐसा स्वतन्त्र मनुष्य जीवन पाकर उसे किसी पुरुष या स्त्री के हाथ में बेच देना गहरी भूल

है। किसी प्रकार की उन्नति के लिए, मोक्ष साधना के लिए और आज-कल की बढ़ती हुई जनसंख्या के समाधान के लिए भी अविवाहित रहकर ब्रह्मचारी रहना सौ सोने का है।

रहा, अधिकतम लोग तो विवाह ही करते हैं और करेंगे। विवाह युवक और युवती का होता है; अतएव दोनों की योग्यता का मिलान होना चाहिए। विवाह अपनी ही जाति में करना चाहिए और वह जाति है 'मानव'।

आरम्भ वाली बात मैं पुनः दोहरा देना चाहता हूँ कि जिनसे बन सके वे आजीवन अविवाहित और शुद्ध ब्रह्मचारी बनकर रहें।

259. प्रश्न—मानसिक रोग के क्या उपचार हैं?

उत्तर—विचार-विवेक; परन्तु यह तभी होगा जब सत्संग करता रहे और सद्ग्रंथों का अध्ययन भी करता रहे। किसी साधन-सम्पन्न संत का सत्संग करते रहिए और उनसे राय लेते रहिए।

260. प्रश्न—साधुता के साथ क्रोध क्यों होता है?

उत्तर—जहां साधुता है वहां क्रोध का किंचित भी स्थान नहीं है। हां, बनावटी साधुता के अहंकार में क्रोध अवश्य रहता है।

261. प्रश्न—संयोग में सुख और वियोग में दुख क्यों होता है?

उत्तर—सब संयोग में न सुख होता है और सब वियोग में न दुख। वस्तुतः अनुकूल के संयोग से सुख होता है और उसके वियोग में दुख। इसका कारण अनुकूल की प्रियता है जो स्वाभाविक है। हां, विवेकवान सम रहने की चेष्टा करते हैं।

262. प्रश्न—क्या सचमुच कुन्ती ने क्वारेपन में कर्ण को जन्म दिया?

उत्तर—आश्चर्य क्या है? लिखा तो यही मिलता है।

263. प्रश्न—मनुष्य पतन पथ में क्यों जाता है?

उत्तर—प्रलोभन-वश।

264. प्रश्न—मनुष्य प्रायः अच्छी बातें क्यों नहीं सोचता?

उत्तर—दोषों से ढका होने के कारण।

265. प्रश्न—बुरी वासनाओं से बचने का क्या उपाय है?

उत्तर—सत्संग, सद्ग्रंथ-अध्ययन तथा सद्विवेक।

266. प्रश्न—अच्छा आदमी यदि कुसंग में पड़ गया, तो उसका क्या होगा?

उत्तर—यदि वह कुसंग से शीघ्र निकलकर सावधान नहीं हुआ तो पतित हो जायेगा।

267. प्रश्न—जब जीव अमर है, तब किसी को मारना पाप क्यों है?

उत्तर—क्या तुम अपने को मारने दोगे? मार पड़ने वाले को दुख होता है, इसलिए पाप है।

268. प्रश्न—यदि कर्म करने पर भी फल न मिले तो क्या करना चाहिए?

उत्तर—संतोष।

269. प्रश्न—संसार में सुखी कौन है?

उत्तर—जिसने भोगों की इच्छाएं जीत ली हैं।

270. प्रश्न—मुक्ति का मार्ग क्या है?

उत्तर—अहन्ता-ममता का त्याग।

*

*

*

271. प्रश्न— खुशी, प्रसन्नता, सुख और शांति में क्या अन्तर है?

उत्तर—मन की अनुकूल स्थिति को खुशी और प्रसन्नता कहते हैं। दोनों में कोई अन्तर नहीं है।

मन-इन्द्रियों से अनुकूल विषयों का ग्रहण सुख है और मन की वासना-हीनता शांति है। सुख विषयनिष्ठ है तथा शांति आत्मनिष्ठ। सुख बाहर से आता है, शांति भीतर से। सुख एक मन की तरंग है और शांति तरंगों का उपशमन।

वैसे शास्त्रों में शांति को, जीवन्मुक्ति की अनुभूति को 'सुख' नाम से भी कहा गया है। सद्गुरु कबीर ने कहा—

जो तू चाहै मूझको, छाँड़ सकल की आस।

मुझ ही ऐसा होय रहो, 'सब सुख' तेरे पास ॥

(बीजक, साखी 298)

यह 'सब सुख' जीवन्मुक्ति की शांति ही है। गीतादि शास्त्रों में शांति एवं जीवन्मुक्ति की अनुभूति को 'सुख' कहा गया है।

सर्वकर्माणि मनसा संन्यस्यास्ते सुखं वशी ॥ 5/13 ॥

स युक्तः स सुखी नरः ॥ 5/23 ॥

योऽन्तःसुखोऽन्तरारामस्तथान्तज्योतिरेव यः ॥ 5/24 ॥

योगिनं सुखमुत्तमम् ॥ 6/27 ॥

अर्थात्—मन से सर्व कर्मों का त्यागकर सुखी हो जाता है ॥ 5/13 ॥ जो योगी है, वह सुखी है ॥ 5/23 ॥ जो व्यक्ति अपने भीतर ही सुख पा लेता है, अपने भीतर ही आराम पा लेता है तथा अपने भीतर ही ज्ञान पा लेता है ॥ 5/24 ॥ योगी को उत्तम सुख मिलता है ॥ 6/27 ॥

अतएव शब्दों को लेकर हठ नहीं पकड़ना चाहिए। शांति तो मन की निर्वासनिक अवस्था ही है; परन्तु 'सुख' को विशेषकर विषयजन्य माना गया है। फिर भी उक्त उदाहरणानुसार 'सुख' का अर्थ निर्वासनिक शांति एवं जीवन्मुक्ति अनुभूति भी है।

श्री पूरण साहेब ने कहा है "आनन्द आनन्द सब कहै, आनन्द जीव को काल।" यहां आनन्द विषय-सुख या काल्पनिक सुख को माना गया है; परन्तु श्री रामरहस साहेब पंचग्रंथी में कहते हैं "आनन्द सिन्धु अहन्तातीता" यहां सर्व अहंताओं से अतीत हो जाने पर जो जीवन्मुक्ति की स्थिति आती है उसे ही 'आनन्द सिन्धु' कहा गया है। पंचग्रंथी में ही कहा गया 'तू हंस स्वतः आनन्द' यहां भी जीवन्मुक्ति सुख से सम्पन्न पुरुष को ही कहा गया है।

श्री काशी साहेब ने कहा—“जीवन्मुक्ति सुख अनित्य पिछानो। सुख स्वरूप जीव नहीं जानो ॥” अर्थात् जीवन्मुक्ति सुख भी देह रहे तक है। देहधारियों का मन उद्वेगित होने से वे दुखी हैं और जब उनमें से कोई व्यक्ति वैराग्य-विवेक पूर्वक वासनाओं को जीत लेता है और उसके मन के उद्वेग समाप्त हो जाते हैं तब वह जीवन्मुक्त हो जाता है। वृत्ति की शांति ही जीवन्मुक्ति सुख है और इसकी अनुभूति देह तक ही हो सकती है। विदेह में जीव शुद्ध स्वरूप मात्र रहता है। वहां तन-मन न होने से न कोई द्वन्द्व है और न उसके अभाव में शांतिवृत्तिजनित सुख है। वहां वृत्ति का अत्यन्तभाव है। वहां एकदम निर्द्वन्द्व दशा है। इसलिए जीवन्मुक्ति सुख भी अनित्य है।

जीव के शुद्ध स्वरूप में सुख नहीं कह सकते। सुख तो दुखों की अपेक्षा से अनुभव में आता है। मनोवृत्ति में ही दुख और सुख होते हैं। जीव के शुद्ध स्वरूप में न शरीर है और न मन; फिर मनोवृत्ति कहां से आ सकती है? अतएव जीव न दुख स्वरूप है और न सुख स्वरूप। श्री काशी साहेब का यह निर्णय अत्यन्त तथ्यात्मक है, सारभूत है। किन्तु साधारण आदमी यह सुनकर

घबरा जाता है कि जीव सुख स्वरूप नहीं है। वह सुख का इतना कीड़ा बना है कि सुख की कल्पना से रहित स्थिति को समझ ही नहीं पाता। परन्तु हम बहुत साधारण रूप से समझ सकते हैं कि यदि हमें दुखों की अनुभूति न हो तो हम सुख की कल्पना भी नहीं कर सकते। जिसे कभी ठण्डी नहीं लगी हो वह आंच में सुख को सोच भी नहीं सकता। जब विदेहस्वरूप शुद्ध जीव में दुखों का किंचिन्मात्र कभी स्पर्श नहीं है, तब वहां सुख रूप दरिद्रता की आवश्यकता ही क्या है।

फिर भी सुख एवं आनन्द की कल्पना में विमोहित मनुष्यों को समझाने के लिए ऋषियों ने कह दिया है कि जीव आनन्द स्वरूप ही नहीं, परमानन्द स्वरूप है। उन्होंने कहा कि जीव स्वरूपतः सर्वापत्तिरहित होने से परमानन्द स्वरूप ही है। अब इस आनन्द स्वरूपता का अर्थ कोई यह लगा ले कि जीव विदेहकाल में किसी प्रकार से आनन्द का अनुभव करता है, कुछ सोचता है, अन्य मुक्त पुरुषों से बातचीत करता है और यह अनुभव करता है कि मैं मुक्त होकर बड़ा सुखी हूं, तो यह सब कल्पना बालबुद्धि ही होगी। विदेह में जीव द्वन्द्वातीत सत्ता मात्र है।

अतएव शब्दों का हठ पकड़कर कभी लड़ने की आवश्यकता नहीं, अपितु स्थानभेद से शब्दों के विभिन्न अर्थ विनम्रतापूर्वक स्वीकार करना चाहिए।

272. प्रश्न—एकता का क्या अर्थ है? आज तक संसार के सभी उपदेशक एकता की रट लगाते चले आ रहे हैं, लेकिन प्रत्यक्ष देखा जा रहा है कि सभी लोगों के विचारों, मतों, रीतियों आदि में एकता नहीं हो रही है। तब क्या ऐसी स्थिति में एकता का उपदेश करना निष्प्रयोजन नहीं है?

उत्तर—सचमुच एकता पर जोर प्रायः सभी लोगों ने दिया है। ऋग्वेद में आता है “संगच्छध्वं संवदध्वं सं वो मनांसि जानताम्” यहां सबको एक साथ चलने, बोलने, जानने आदि की राय दी गयी है।

यह सच है कि संसार में सर्वथा एकता न कभी हुई न हो सकती है; क्योंकि भूमण्डल का क्षेत्र विस्तृत है। उसमें अनेक देश, प्रदेश, क्षेत्र, भाषा, विचार, संस्कार, रीति-रिवाज और मान्यताएं हैं; अतएव सबकी सभी प्रकार की एकता हो पाना असम्भव है। किंतु विश्व के सम्पूर्ण मानवों में एकता का एक ऐसा मूलभूत माध्यम है, एक ऐसे सार्वभौम लय एवं संगीत हैं जो मानव-मानव को अलग नहीं होने देते।

सबके शरीर एक ही प्रकार के मिट्टी-पानी आदि से बने हैं। सभी के भीतर एक प्रकार के ज्ञान-गुण धर्म वाले चेतन देव का निवास है। सबको अनुकूलता-प्रतिकूलता में क्रमशः सुख और दुख के अनुभव होते हैं। सबको

इन्द्रिय-मन की लम्पटता से दुख तथा उनके निग्रह से शांति होती है। अतएव सारी मूलभूत बातों में कोई अन्तर नहीं दिखता।

विषमता के जितने आधार हैं या तो झूठे हैं या तो एकदम गौण। कहीं-कहीं तो एक ही सत्य को अनेक तरीकों और विभिन्न शब्दों से कहने के कारण सत्य में भी विभिन्नता जैसी लगती है और लोगों में मिथ्या अहंकार-वश लड़ाइयां हो जाती हैं। ऋग्वेद का यह मन्त्र बड़ा ही मूल्यवान है—

“एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति।”

अर्थात् एक ही सत्य को विद्वान लोग अनेक प्रकार से कहते हैं।

किसी प्राणी की अन्तरात्मा दुख नहीं चाहती। इससे यह सहज समझा जा सकता है कि हमें दूसरे को दुख नहीं देना चाहिए। सभी धार्मिक मतों के लोग जीवन की पवित्रता तथा अन्तःकरण की शुद्धि में ही आत्मकल्याण बताते हैं।

बृहदारण्यक उपनिषद् में जब याज्ञवल्क्य राग-द्वेष-रहित होकर स्वरूपज्ञानी का जीवन्मुक्ति दशा में विचरण करने का वर्णन करते हैं, तब कहोल ऋषि पूछता है कि ऐसा ज्ञानी किस साधना से बने? तब याज्ञवल्क्य कहते हैं—‘चाहे जिस साधना से बने, ऐसा ही बने’—“येन स्यात् तेन ईदृशः एव।”

सांख्यदर्शन भी कहता है—‘जिस किसी भी प्रकार उस (प्रकृति और पुरुष के संयोग) का नष्ट होना ही पुरुषार्थ है’—यद्वा तद्वा तदुच्छितिः पुरुषार्थः।”

सद्गुरु कबीर कहते हैं—

समुझे की गति एक है, जिन्ह समुझा सब ठौर।

कहहिं कबीर ये बीच के, बलकहिं और कि और ॥

(बीजक, साखी 190)

यहां विचारकों ने साधनों पर दुराग्रह नहीं किया है। जिस प्रकार अज्ञान की ग्रंथि कटे वही साधन है और समझदारों एवं ज्ञानियों की स्थिति एक समान राग-द्वेष-रहित शान्तिमय है।

लोगों के मन में एकता की भावना है कि नहीं, इस पर न ध्यान देकर हमें यह देखना है कि हमारे मन में एकता की भावना पनपी कि नहीं। सद्गुरु कबीर का यह तलस्पर्शी वाक्य हृदय को कितना आंदोलित करता है “जित देखो तित प्राण हमारो।”¹ जहां देखता हूं वहां हमारा प्राण है। मनुष्य ही नहीं,

1. बीजक, साखी 341।

जीव मात्र के प्रति अपनत्व की भावना करने पर मन की यह स्थिति आती है। पूरे विश्व को हमें कैसे मित्र मानना चाहिए यह पूज्य ऋषियों ने अपनी अन्तरात्मा की लय में, हृदय के उद्गार में हमें सिखाया है—

अभयं मित्रादभयममित्रादभयं ज्ञातादभयं पुरो यः।

अभयं नक्तमभयं दिवा नः सर्वा आशा मम मित्रं भवन्तु॥

(अथर्ववेद 19/15/6)

अर्थात्—‘हमें न अपने मित्रों से भय हो, न शत्रुओं से, जिनको हम जानते हैं और जिनको नहीं जानते हैं उनसे भी हमें कोई भय न हो। न दिन को हमें भय हो और न रात को। सभी दिशाएं (विश्व) हमारी मित्र हों।

मित्रस्य मा चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षन्ताम्॥

मित्रस्याहं चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे॥

मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे।

(यजुर्वेद 36/18)

अर्थात्—सभी प्राणी मुझे मित्र के रूप में देखें और मैं भी उन्हें मित्र के रूप में देखूं।

अंतिम सार यह समझना चाहिए कि विश्व में चाहे जितना मतभेद हो जाये; परन्तु मनुष्यों की शाश्वत आवश्यकताएं समान हैं। सुख-दुख में सबके दिल की धड़कनें एक तुल्य हैं और सबका अपना आपा शान्तमय चेतनस्वरूप एक सदृश है।

लोगों के गुण, कर्म, संस्कार तथा योग्यताएं अनेक और विभिन्न होने से संसार में मतों की अनेकता समाप्त नहीं हो सकती; अतएव हमें चाहिए कि उन्हें दोष के रूप न लेकर सदगुण के रूप में देखने के अभ्यासी बनें। पण्डित माधवाचार्य की यह सीख कितनी सुहावनी है—

“माल्यं कस्य विचित्रपुष्परचितं प्रीत्यै न संजायते?”

(सर्वदर्शन संग्रह, मंगलाचरण)

अर्थात्—रंग-बिरंगे फूलों से बनायी गयी माला किसके मन को अच्छी नहीं लगती?

इसी प्रकार अनेक मन रूपी अनेक रंगों के फूलों से बनायी गयी ‘मानवता’ रूपी माला एकता की ओर ही संकेत करती है और यह सबको प्रिय होना चाहिए। सदगुरु कबीर की यह साखी फिर से स्मरण करो—

समुझे की गति एक है, जिन्ह समुझा सब ठौर।
कहहिं कबीर ये बीच के, बलकहिं और कि और ॥

(बीजक, साखी 190)

*

*

*

273. प्रश्न—पारख सिद्धांत और वेदान्त में क्या कोई मौलिक विभिन्नता है?

उत्तर—ईश, केन, कठ, मुण्डक, माण्डूक्य, ऐतरेय, तैत्तिरीय, प्रश्न, श्वेताश्वतर, छान्दोग्य, बृहदारण्यक आदि मुख्य उपनिषदें वेद, ब्राह्मण, आरण्यक ग्रंथों के प्रायः अंश हैं, जिनमें प्रायः आध्यात्मिक चर्चा होने से ज्ञानपरक हैं; इसलिए ये वेद + अन्त = वेदान्त के नाम से जाने जाते हैं। तात्पर्य यह है कि इनमें वेदों का अन्तिम सार अध्यात्मज्ञान है या अन्तिमी ज्ञान है। परन्तु इन उपनिषदों में आत्मा पर ही मुख्य जोर देते हुए स्वरूपविवेचन में स्थल-स्थल पर काफी मतभेद है।

इन उपनिषदों के आध्यात्मिक ज्ञान का समन्वय करने के लिए गीता में काफी प्रयास किया गया है; परन्तु गीता स्वयं आध्यात्मिक उपदेशों का एक अजायबघर बन गयी है और उसमें एक मत सिद्ध कर पाना असंभव हो गया है।

पीछे से वादरायण ने उपनिषदों के ज्ञान का समन्वय करने के लिए ब्रह्मसूत्र, जो छह शास्त्रों में एक है, लिखा; परन्तु ब्रह्मसूत्र को लेकर बड़ा बखेड़ा खड़ा हुआ। उसके पहले भी भाष्य होते रहे; परन्तु अत्यन्त प्रसिद्ध पहला भाष्य स्वामी शंकराचार्य (800 ई०) का है जो शारीरिक भाष्य के नाम से जाना जाता है और उसका सिद्धान्त 'अद्वैत' है। दूसरा भास्कराचार्य (1000 ई०) का श्री भास्कर भाष्य है, जिसका सिद्धांत 'भेदाभेद' है। तीसरा रामानुजाचार्य (1140 ई०) का श्री भाष्य है, जिसका सिद्धांत 'विशिष्टाद्वैत' है। चौथा माध्वाचार्य (1238 ई०) का पूर्णप्रज्ञ भाष्य है, जिसका सिद्धांत 'द्वैत' है। पांचवां निम्बार्काचार्य (1250 ई०) का वेदांत-पारिजात है, जिसका सिद्धांत 'द्वैताद्वैत' है। छठां श्री कण्ठ (1270 ई०) का शैवभाष्य है, जिसका सिद्धांत 'शैवविशिष्टाद्वैत' है। सातवां श्रीपति (1400 ई०) का श्रीकरभाष्य है, जिसका सिद्धांत 'वीरशैवविशिष्टाद्वैत' है। आठवां बल्लभाचार्य (1500 ई०) का अणुभाष्य है, जिसका सिद्धांत 'शुद्धाद्वैत' है। नवां विज्ञानभिक्षु (1600 ई०) का विज्ञानमृत है, जिसका सिद्धांत 'अविभागाद्वैत' है। दसवां बलदेव (1725 ई०) का गोविन्दभाष्य है, जिसका सिद्धांत 'अचिंत्यभेदाभेद' है।

इस प्रकार जिस वादरायण के वेदान्तदर्शन को मुख्यतः वेदान्त कहने का प्रचलन हुआ और जो उपनिषदों के ज्ञान के समन्वय में लिखा गया था वह इस स्वाभाविक विभिन्नता भरे जगत में पड़कर नाना मतों को धारण करने वाला हो गया।

वेदांत भाष्यकार शंकराचार्य लिखते हैं—

‘इदानीं केवलाधिष्ठात्रीश्वरकरणवादः प्रतिषिध्यते।’

अर्थात्—जो लोग ईश्वर को केवल निमित्तकारण मानते हैं उनके मत का खण्डन करने के लिए वर्तमान अधिकरण की रचना की जा रही है। शंकराचार्य ईश्वर को केवल निमित्त कारण मानने वाले को अवैदिक कहते हैं। अतः उनके ख्याल से समस्त वैष्णव तथा आर्यसमाज के सिद्धांत अवैदिक ही हैं। स्वामी शंकराचार्य के ख्याल से कुम्हार मिट्टी लेकर घड़ा नहीं बनाता, अपितु वह स्वयं घड़ा हो जाता है। अर्थात् ईश्वर जड़ प्रकृति को लेकर जगत नहीं रचता; अपितु स्वयं जगत बन जाता है। वस्तुतः उनके मत से ईश्वर, जीव, जगत सब मिथ्या हैं, माया द्वारा व्यर्थ प्रतीतमात्र हैं, एक ब्रह्म ही सत्य है।

द्वैतवादियों, विशिष्टाद्वैतवादियों आदि ने शंकराचार्य को पानी पी-पी कर कोसा है। रामानुजाचार्य ने अपने श्री भाष्य में शंकराचार्य को छिपा हुआ बौद्ध कहा। उनके मत को हास्यास्पद बताया। पद्मपुराण में शिव के मुख से शंकराचार्य के मायावाद सिद्धांत को अवैदिक करार दिलाया गया—“मायावादम् अवैदिकम्” और उसी ग्रंथ में शिव से कहलवाया गया कि “माया की कल्पना एक मिथ्या सिद्धान्त है और बुद्धमत का ही छिपा हुआ रूप है। हे देवि! मैंने ही कलियुग में एक ब्राह्मण (शंकराचार्य) का रूप धारणकर इस मिथ्या सिद्धांत का प्रचार किया।” यथा—

मायावादमसच्छास्त्रम् प्रच्छन्नं बौद्धमेव च।

मयैव कथितं देवि! कलौ ब्राह्मणरूपिणा ॥

(पद्मपुराण, उत्तरखण्ड 236)

यहां तक कि माध्वाचार्य के शिष्य त्रिविक्रम के पुत्र नारायण ने मणिमंजरी और मध्वविजय—इन दो ग्रंथों में शंकराचार्य को महाभारतोक्त मणिमान नामक दैत्य बताया।

इस प्रकार वेदांत के एक भाष्यकार दूसरे को अवैदिक एतदर्थ नास्तिक घोषित करते रहे और वेदांत में नाना मतों एवं सिद्धांतों की स्थापना करते रहे। फिर ‘वेदांत’ से क्या सिद्धान्त माना जाये—अद्वैत कि विशिष्टाद्वैत या द्वैत, अथवा शुद्धाद्वैतादि या सब का सब?

हां, यह निर्विवाद है कि 'वेदांत' शब्द विद्वतमण्डली या साधारण जनता में अद्वैत ब्रह्मवाद के अर्थ में रूढ़ हो गया है; इसलिए पूछा हुआ वेदांत शंकराचार्य का अद्वैतवाद ही होगा।

शंकराचार्य के वेदांत की सारी प्रक्रिया का वर्णन संक्षिप्त रूप में भी यहां करना सम्भव नहीं। यहां उनका सारतत्त्व ही बताना होगा। शांकरवेदांत के मत से सत्ता केवल एक है जो अखण्ड, परिपूर्ण व्याप्त है। उसका नाम आत्मा या ब्रह्म है। यह जगत तीनों काल में नहीं है। फिर प्रतीत कैसे होता है? केवल माया से। माया क्या है? इसे मत पूछो। इसे सत्य कहूं तो द्वैत खड़ा होगा, और असत्य कहूं तो प्रत्यक्ष उसका खेल संसार दिखाई देता है। अतः न कहने योग्य है—अनिर्वचनीया।

जब एक ही ब्रह्म है तब नानत्व क्यों दिखता है? बन्ध-मोक्ष किसका है? नाना मत खड़ा करने वाला कौन है? ये सारे प्रश्न करना एक बखेड़ा बढ़ाना है। वस्तुतः अद्वैतवाद को समझने के लिए गुरु और वेदांत वाक्यों पर विश्वास करना चाहिए। यह ठीक है कि अद्वैतवाद में गुरु और वेदांत भी मिथ्या हैं, अतएव चुप रहना ही छुटकारा का सरल रास्ता है।

अद्वैतवेदांत में घट-मृत्तिका, जल-तरंग, स्वर्ण-भूषण न्याय ब्रह्म-जगत एक है; अतएव बन्ध-मोक्ष भी भ्रम हैं। इस मत में अन्ततः जड़-चेतन पृथक नहीं हैं; किन्तु सर्वथा एक है।

'पारख' सद्गुरु कबीर का मौलिक सिद्धान्त है, जिसका मौलिक वर्णन उनके रचित बीजक ग्रन्थ में है। उसके बाद कबीर परिचय, पंचग्रंथी, त्रिज्या, निर्णयसार, निष्पक्ष सत्य ज्ञान दर्शन आदि पारख सिद्धान्त के ग्रन्थ हैं। लोग बीजक में बुद्धिभेद से अनेक सिद्धान्त भले आरोपित करें; परन्तु 'पारखसिद्धान्त' में मतभेद नहीं है।

पारख सिद्धान्त जड़ और चेतन को सर्वथा-सर्वदा अलग-अलग मानता है। जड़ में अनेक मौलिक भेदपरक तत्त्व हैं तथा चेतन स्वरूपतः समान होते हुए भी उनके असंख्य व्यक्तित्व हैं। सभी चेतन एक दूसरे से भिन्न, व्याप्य-व्यापक भावरहित हैं। चेतन जड़ के वासना-वश जन्म-मरण में भटकते हैं और मानव तन में किये शुभाशुभ कर्मों के फल चारों खानियों में भोगते हैं। मानव शरीर में विवेकवानों के सत्संग तथा स्वयं विवेक से जब स्वरूपज्ञान हो जाता है और जब जड़ की आसक्ति छोड़कर द्रष्टा चेतन अपने स्वरूप में स्थित हो जाता है, तब वह सदा के लिए मुक्त हो जाता है। मुक्त जीव सदैव शिव स्वरूप अर्थात् कल्याणमय, शान्तिमय है।

शम, दम, विवेक, वैराग्य, तितिक्षा, गुरु-उपासना आदि साधनपक्ष 'वेदांत' और 'पारख' का एक है; परन्तु वेदांत में आगे चलकर भोग-योग मिला दिया

जाता है जो योगवाशिष्ठ, विचारसागर आदि ग्रंथों में प्रसिद्ध है। 'ब्रह्मज्ञानी युवती का उपभोग करते हुए भी सदैव संन्यासी है।' "भोगै युवती सदा संन्यासी।" (विचार सागर 5/166)। पारख सिद्धांत इस निर्लिप्तवाद के विरोध में है।

'वेदांत' सभी चेतनों तथा जड़ को भी एक में मूलतः मिलाकर अद्वैत मानता है; किन्तु 'पारख' अन्य चेतनों तथा जड़वर्ग से अपने आपको भिन्न कर असंगता एवं निराधार स्थिति को अद्वैत मानता है।

बहुत कहां तक कहा जाये, वेदांत मूलतः जड़ और चेतन को एक में मिला देता है और पारख दोनों को सर्वथा भिन्न कर देता है सर्वदा के लिए।

'पारख' बीजक समर्थित होने से वह नया नहीं है; किन्तु उसका स्वरूप शाश्वत है। शब्दावली का आग्रह छोड़ देने पर उसके विचारक भी पुरातन हैं।

*

*

*

274. प्रश्न—सुषुप्ति की तरह समाधि अवस्था में भी क्या शरीर-संसार का भान नहीं रहता?

उत्तर—सुषुप्ति एकदम अचेती अवस्था है; परन्तु समाधि अचेती अवस्था नहीं है। वह संकल्प-तरंगों से रहित केवल शान्ति अवस्था है। हठयोगियों की समाधि सुषुप्ति हो सकती है; परन्तु विवेकियों की समाधि शान्ति मात्र है।

275. प्रश्न—पारख समाधि, निर्विकल्प समाधि तथा तुरीयावस्था—ये तीनों अर्थ की दृष्टि से एक हैं या नहीं?

उत्तर—पहले संकल्पों को छोड़-छोड़ कर शान्त रहना एवं केवल संकल्पों को देखते रहना, उनमें मिलना नहीं। दीर्घकाल के ऐसा अभ्यास करने से संकल्पों का सर्वथा छूट जाना और चेतन सत्ता का शान्त मात्र रह जाना—पारख समाधि है। कल्पनाओं से रहित शान्ति अवस्था निर्विकल्प समाधि है। अतएव दोनों में मौलिक अन्तर नहीं है। शर्त यह है कि यथार्थ बोधपूर्वक यह संकल्पहीन अवस्था प्राप्त की जाये। परन्तु तुर्यगा (तुरीया) एक विचित्र अवस्था है। एक तो मूल में इसका सिद्धांत जड़-चेतन अभिन्नवाद है ही, और दूसरे इस अवस्था का वर्णन महा अतिशयोक्तिपूर्ण है।

योगवासिष्ठ के उत्पत्ति प्रकरण के 118वें सर्ग में वर्णन मिलता है कि तुर्यगा अवस्था में पहुंचकर अन्तर-बाहर कुछ भान नहीं रहता। वह मुरदे के समान संसार से शून्य हो जाता है। दोनों में केवल इतना ही अन्तर है कि एक में श्वास चलता है और दूसरे में श्वास नहीं चलता। दूसरे द्वारा बारम्बार जगाने पर भी तुर्यगा-प्राप्त ज्ञानी का जागरण नहीं होता। योगवासिष्ठकार कहते हैं

“भेदस्यानुपलम्भतः” अर्थात् जिस अवस्था में दूसरों द्वारा प्रेरित करने पर भी भेद की उपलब्धि नहीं होती, वही तुर्यगा है।

उपर्युक्त वर्णन अतिशयोक्तिपूर्ण है। ब्रह्मज्ञान कोई क्लोरोफार्म नहीं है कि व्यक्ति उसे सूँघकर सदैव के लिए अचेत हो जाये। अब भेद स्पष्ट समझ सकते हो।

276. प्रश्न—जब-जब धर्म की हानि होती है, तब-तब भगवान का अवतार होता है, इस बात में क्या तथ्य है?

उत्तर—महान पुरुषों के गुणों पर रीझकर जनता उन्हें अवतार मान लेती है, बस इतना ही तथ्य है। संसार सदैव अंधकारमय है। महान पुरुष ही कुछ प्रकाश फैलाकर मानवता उजागर करते हैं।

अवतारवाद की मान्यता है कि जब पाप अधिक बढ़ता है तब अवतार होते हैं और यह भी मानते हैं कि सत्युग में चारों चरण पुण्य है, त्रेता में तीन चरण पुण्य तथा एक चरण पाप, द्वापर में आधा-आधा पाप-पुण्य और कलियुग में एक चरण पुण्य तथा तीन चरण पाप है। परन्तु दस मुख्य अवतारों में मत्स्य, कच्छप, वराह और नृसिंह चार अवतार सत्युग में होते हैं। वामन, परशुराम और राम तीन अवतार त्रेता में होते हैं। कृष्ण और बलराम द्वापर में तथा केवल एक अवतार कल्कि कलियुग में। इस हिसाब से तो सत्युग चारों चरण पाप से पूर्ण था तभी चार अवतारों की आवश्यकता हुई। त्रेता में तीन चरण पाप था तब तीन अवतारों की आवश्यकता हुई। द्वापर में दो चरण पाप होने से दो अवतार तथा कलियुग में केवल एक चरण पाप होने से एक ही अवतार में काम चल जायेगा।

पाप बढ़ने से अवतार होते हैं—इस हिन्दू-मान्यतानुसार भारत के बाहर इंग्लैण्ड, अमेरिका, रूस, चीन, जर्मनी, जापान आदि में कभी पाप हुआ ही नहीं, तभी तो चौबीसों अवतारों में कोई भारत से बाहर नहीं हुआ। और इतना ही क्या, जितने मुख्य अवतार हैं उत्तरी भारत में हुए; इसलिए विश्व में पाप का महा केन्द्र यह उत्तरी भारत (आर्यावर्त) ही है, किन्तु हिन्दू मान्यता है कि उत्तरी भारत ही धर्म का केन्द्र है। अतएव अवतारवाद अपने आप में एक कल्पना है।

महापुरुषों के प्रति श्रद्धा रखना महान गुण है। परन्तु श्रद्धा का अतिरेक करना पागलपन है। हम महान पुरुषों को अवतार कहकर उन्हें केवल पूजने की वस्तु बना देते हैं और उनके सद्गुणों का आचरण यह कहकर नहीं करते कि हम तो साधारण आदमी हैं। हम ऐसा नहीं कर सकते। वे अवतार थे, भगवान थे, तब ऐसा उच्च काम कर सके। भक्ति के अतिरेक ने कर्म सिद्धांत को खोखला बना दिया है; क्योंकि इनके यहां पापी अजामिल तथा अभक्ष्यभक्षी गिद्ध सब तर जाते हैं जान-अंजान में भगवान की खुशामद करके।